ओ३म्

आयुर्वेद

सम्पादकः
विरजानन्ददैवकरणिः

प्रकाशकः
परोपकारिणीसभायान्तर्गतः
वैदिकपुस्तकालयः
केसरगंज (अजमेर)

अथ—

दामोदरस्यान्ति (क) शिष्यस्तपस्यन्तं कृपाकरम्।
उवाच परया भक्त्या ज्ञानज्योतिं यतीश्वरम्॥ १॥
भगवन् यतिवर्यस्त्वं महारोगाः कलावती।
पीडयन्ति मनुष्यांस्ते क्षयस्तेषां कथं भवेत्॥ २॥
वातक्षयाश्मरीकुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः॥ ३॥
अन्येऽपि बहवः सन्ति गुल्मातिसारकादयः।
सर्वेषामपि तेषां मे नाशं प्रायो वद प्रभो॥ ४॥

ज्ञानज्योतिरुवाच

यमादिनियमैर्थुक्तं ब्रह्मज्ञानस्वरूपिणम् ।
सर्वदेवगुरुं नत्वा यथाज्ञानं वदामि ते॥ ५॥
रसपाषाणधातूनामौषधीनामनेकधाः ।
अन्येषां साध्यतां सिद्धिं महाप्रत्ययकारिणः॥ ६॥

---

१. तपस्या में रत दयालु यतीश्वर दामोदर ज्ञानज्योति नामक गुरु के पास जाकर परमभक्ति से शिष्य ने कहा—

२. हे भगवान आप यतिश्रेष्ठ हो। इस कलियुग में महारोग मानवों को पीडित कर रहे हैं, उनका नाश (निवारण) किस प्रकार हो सकता है?

३. वे आठ प्रकार के महारोग ये हैं—१. वात रोग, २. क्षय रोग (तपेदिक) ३. पथरी, ४. कुष्ठ (कोढ़), ५. जलोदर, ६. भगन्दर, ७. अर्श (बवासीर) और ८. संग्रहणी।

४. गुल्म (वायुगोला), अतिसार (दस्य) आदि और भी अनेक रोग हैं, हे प्रभो! कृपा करके इन सभी निवारण का उपाय बतलाइये।

यह सुनकर गुरु ज्ञानज्योति ने कहा—

५. सब देवों के गुरु परमेश्वर और यमनियमादि योगांगो से युक्त ब्रह्मज्ञानी अपने गुरु को नमस्कार करके जैसा मेरा ज्ञान है वैसा ही उपदेश तुझ शिष्य के लिये करता हूँ॥

६. पारस आदि रस, हीरा पन्नादि पाषाण (पत्थर), ताम्र आदि धातु तथा वत्सनाभ आदि काष्ठौधियाँ अनेक प्रकार की हैं। ये तथा इसी प्रकार की अन्य औषधियों को सिद्ध करना चाहिये क्योंकि

सिद्धानां सिद्धिमाश्रित्य सिद्धसंकेतसाधनम्।
विधिना सम्यगेवैतत् सत्यं सत्यंमयोच्यते॥ ७॥
एवं न निन्दयेच्छास्त्रं गुरुवक्त्रं च साधये (त्)।
पृथक् पुस्तकवृत्तान्तं गुरुवाक्यं पृथक् पृथक्॥ ८॥
एतच्छास्त्रप्रयोगस्तु जरामृत्युनिवृत्तये ।
रसशोधनकर्मार्थं प्रक्षालनविधिस्ततः ॥ ९॥
याथातथ्येन वक्ष्यामि शृणु चैकाग्रमानसः ।
रजनीकनकद्रावकुमारिमहिषीमलम् ॥ १०॥
भृंगराजोभयाकोलचित्रमूलं नृपद्विषः ।
अपामार्गः समं सर्वं रसदोषा हरन्ति हि॥ ११॥
भिषजैर्बुद्धिपर्यायैः प्रयोगो विविधो भवेत्।

सिद्ध होने पर ये महालाभ कारी होते हैं।

७. सिद्ध वैद्यों की सिद्धिविधि का आश्रय लेकर औषध सिद्ध करने के संकेतों और साधनों को विधिपूर्वक सत्य-सत्य में कह रहा हूँ॥

८-९. अपने अज्ञानवश आयुर्वेदादि शास्त्र की निन्दा न करे और शास्त्र में अप्राप्य गुरु की बात को भी अमान्य न करें क्योंकि शास्त्र में लिखित औषध प्रयोग पृथक् हैं तथा गुरु के अपने अनुभूत योग पृथक् होते हैं। इस आयुर्वेदशास्त्र का यथाविधि प्रयोग बुढ़ापे और मृत्यु को भी दूर भगा देता है।

१०-११. रसों के शोधन और प्रक्षालन विधि को यथोचित प्रकार से कहता हूँ हे शिष्य! उसे एकाग्र चित्त होकर सुनो। औषधियों को शुद्ध करने के लिये निम्न लिखित पदार्थ से प्रयुक्त होते हैं— रजनी (हल्दी), कनक (धतूरे) का रस, घीकुमारी (गवारपाठा) भैंस का मल (चोथ), भृंगराज अभया (हरड़) कोल* पीपल अथवा करे, चित्रकमूल चीता की जड़ और अपामार्ग। इनके रस से शोधित पदार्थ सभी दोषों को हर लेते हैं।

भिन्न-भिन्न रोगों का निवारण हो सकता है। यह वैद्य की बुद्धि पर निर्भर करता है। जैसे एक ही औषधि अनुपान भेद से अनेक रोगों में लाभकारी हो सकता है।

---

* पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सौंठ इन पांच को पंचकोल कहते हैं। (भावप्रकाश निघण्टु)

अथ गन्धकशोधनम्

तैलाज्यदुग्धसंयुक्तं दोलिकायां च कारयेत्॥ १२॥
एतत्सामान्यतः प्रोक्तं विशेषं शृणु साम्प्रतम्।
दुग्धेन प्रथमं याममम्लपर्णं च गन्धकम्॥ १३॥
मर्द्दयेद्यत्नतो धीमानुद्धरेद्यन्त्र मध्यतः ।
तैलदुग्धाम्लतो युक्तं भाण्डमध्ये विनिक्षिपेत्॥ १४॥
तस्मिन्नेवोर्ध्वभाण्डेतु शुद्ध भवति गन्धकम्॥ १५॥
रसं रसायनं चैव शुद्धमेव हिगन्धकम् ।

अव हरितालशोधनम्

धेनुमूत्रकुमारीभ्यां दोलिकायां च शोधयेत्॥ १६॥
तत् उद्धृत्य ताभ्यां च मर्द्दयेद्धरितालकम्।
हरते सर्वदोषांश्च हरितालं सुशोधितम्॥ १७॥
दोलिकाकवचीयन्त्रे गजाख्ये तालकं हरेत्।
हरते सर्वदोषांश्च भिषजानामनुत्तमम्॥ १८॥

गन्धक शोधन विधि

१२. सामान्यतया गन्धक को शुद्ध करने के लिये तेल, घी अथवा दुग्ध से दोला यन्त्र में शुद्ध कर सकते हैं। इसको शुद्ध करने का विशेष प्रकार यह है—

१३-१५. पहले एक याम=प्रहर (तीन घण्टे) तक गन्धक को दूध से शोधे। पुनः निम्बू के पत्तों के स्वरस से शुद्ध करे। अर्थात् इन दोनों की भावना देता जाये और शुद्ध करता जाये। तैल, दूध और निम्बूरस से युक्तगन्धक को मिट्टी के घड़े में डाल दे। उस घड़े पर एक घड़ा सीधा करके रख दे, उसमें भी गन्धक डाल दे। इस प्रकार रख के पातालयन्त्र से गन्धक को शुद्ध कर ले। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ गन्धक रस और रसायन का कार्य करता है।

हरताल शोधन विधि

गोमूत्र तथा घीकुमारी के रस से दोलिकायन्त्र में हरताल शुद्ध होती है। दोलायन्त्र से हरताल को निकाल पुनः गोमूत्र तथा गवारपाठे के रस में खरल करें अर्थात् इनकी भावना देकर मर्दन करे। इस प्रकार शोधित हरताल सभी रोगों का हरण करता है। दोलायन्त्र. कवचीयन्त्र

अथ वत्सनाभ शोधनम्

तण्डुलो ले नीरे विपचेद् दोलिकात्मना।
हरते सर्वरोगांश्च वत्सनाभ सुशोधितम्॥ १९॥

अथ हिंगुलशोधनम्

हिंगुलं खरमूत्रेण दोलिकायां विशोधयेत्।
धूम्रे हिंगुलयोल्यैवव याममात्रेण शुध्यते॥ २०॥
त्रिफला त्रिकर्वह्नौ भर्जनाच्चाथ शुध्यति।
भस्माप्यभावितं वहनौ लवणैः शोधयेद्बुद्धः॥ २१॥
कुमारीदुग्धसंयुक्तं जयपालं च कल्पयेत्।
वाटिका भर्जयेद्वहनौ-आरनाले कुलस्यकम्॥ २२॥

तथा गजयन्त्र में भी हरताल का शोधन किया जाता है। श्रेष्ठ वैद्यों का यह कथन है कि ऐसा शुद्ध हरताल सर्वरोगापह होता है।

१९. वत्सनाभ को चावलों के पानी में दोलायन्त्र से पकाने पर वत्सनाभ शुद्ध हो जाता है। यह शुद्ध वत्सनाभ सभी रोगों का शमन करता है।

हिंगुल शोधन विधि*

२०. हिंगुल को शुद्ध करने के लिये गधे के मूत्र में दोलिकायन्त्र से पकाये। जब हिंगुल से धवां निकलना बन्द हो जाये तो एक प्रहर (३ घण्टे) मे हिंगुल शुद्ध हो जाता है।

२१. त्रिफला के साथ तीन बार अग्नि में भूनने से भी हिंगुल शुद्ध हो जाता है। इस हिंगुल की भस्म को बिना भावना दिये भी लवणों के द्वारा अग्नि में शुद्ध किया जा सकता है।

२२. गवारपाठा के गूदे=रस में जयपाल=जमालघोटा को घोटकर गोली बना लें, उन गोलियों को आग पर भूनकर चावल के पानी में भिगो दें। इस भातिं जमालघोटा शुद्ध हो जाता है।

---

* हिंगुल को भेड़ के दूध की तथा अम्लक वर्ग=निम्बू आदि के रस की सात सात भावना देने से शुद्ध हो जाता है॥

तक्रेण क्षालितौ शुद्धौ नवसादरटंकणौ।
कूष्माण्डरसयोगेन दारुर्मुख्यमनः शिला॥ २३॥
कल्किता सर्वरोगाश्च हरते नात्र संशयः।

अथ ताम्रशोधनम्

ताम्रं चरेतवत्कृत्वा खर्प्परेज्वालयेद् बुद्धः॥ २४॥
पुनर्नवारसेनाथ पञ्च दधात्पुरानि तु।
एवमुल्वं भवेच्छुद्धं रसायनकरं परम्॥ २५॥
न विषं विषमित्याहुस्ताम्रमेव महाविषम्।
विषादेवैकदोषत्वं शुल्वे चाष्टगुणं मतम्॥ २६॥
शुकतुण्डकिः शुकाभं छर्दिकृद्रक्तदोषकम्।
कृष्णं कषायं रक्तं च तथैव मृदु स्निग्धकम्॥ २७॥
तापे भवतित्कृष्णं शुल्वं कलुषवर्जितम्।

---

२३. नौसादर और सुहागा तक=छाछ से धोने से ही शुद्ध हो जाते हैं। पेठे के रस और दारुहल्दी के संयोग से मैनसिल शुद्ध होता है। मैनसिल का कल्क=सभी रोगों का निवारण कर देता है, इसमें सन्देह नहीं है।

ताम्र शोधन विधि

२४. ताम्बे का रेत की तरह बुरादा करके मिट्टी के ठीकरे में आग पर जलायें।

२५. इस जले हुये ताम्र चूर्ण में पुनर्नवा के रस की भावना देकर पांच पुट दें अर्थात् पांच बार जलायें। इस प्रकार करने से ताम्बा शुद्ध हो जाता है, यह बढ़िया रसायन है।

२६. कोई विष तब तक विष नही होता जब तक उल्टा प्रयोग न किया जाये किन्तु ताम्बा विष से बढ़कर महाविष है, अन्यों विषों की तुलना में ताम्बे में आठ गुणा विष अधिक होता है।

२७. ताम्बे का रंग तोते की चोच के समान लाल तथा हरित आभा लिये होता है। यह प्यास कारक और रक्तदोष करनेवाला है। स्वाद में काली ताम्र भस्म कषाय होती है तथा नील भस्म मृदु और चिकनी होती है। तपाने पर इसका रंग काला तथा कलुष रहित हो जाता है।

अथ पित्तलशोधनम्

पित्तलं रेतवत्कृत्वा गुंजापर्णरसै र्मुहुः॥ २८॥
सप्त कृत्वः पुटान् दत्त्वा ततः शुद्धं च पित्तलम्।

अथ लौहशोधनम्

लौहं च रेतवत्कृत्वा तिन्दुवत्कलजै रसैः॥ २९॥
पुटद्वादश मात्रेण कवची वह्नीयोगतः।
हरीतकीफलद्रावै रसमत्सादि शोधयेत्॥ ३०॥
सर्वरसायने ज्योज्यां लौहं शुद्धं तु धीमता।

अथ सारशोधनम्

सारं च रेतवत्कृत्वा टंकणद्रावयोगतः॥ ३१॥
सौवेरेण ततः कुर्यात् प्रक्षालनमतन्द्रितः।
अथ लौहमलं शुद्धं कृत्वा काञ्जिककल्कितम्॥ ३२॥
क्षालयेद् वारिमा धीमान् तथा वै शोषयेद् बुधः।

पीतल शोधन विधि

२८. पीतल को रेत की भांति चूर्ण करके गुंजा (चिरभटी) के पत्तों के रस में बार-बार भिगोकर भावना देकर सात बार पुट दें, इस प्रकार करने में पीतल शुद्ध हो जाता है।

लौह शोधन विधि

२९-३०. लोहे को रेत की तरह चूर्ण करके तेन्तु और के रस की भावना देकर कवचयन्त्र में अग्नि की बारह पुट दें। पुनः हरड के फल के रस से और से शोधन कर लें। ऐसा शुद्ध लौह रसायनों में श्रेष्ठ होता है।

सार (फौलाद) शोधन

३१. सार (फौलाद) को रेत की भांति चूरा करके टंकण (सुहागे) के घोल और सौवीर (बेरी) की छाल के रस में सावधानी पूर्वक भिगोकर शुद्ध कर लें।

३२. लौहमल=मण्डूर को शुद्ध करके पारा-गन्धक की कांजी में कल्क करे=पकाये। तदनन्तर जल से शुद्ध करके सुखा ले।

अथ वंगशोधनम्

अथ वंगरसं कृत्वा भृंगराजरसपुरात्॥ ३३॥
अष्टौ दद्यात्प्रयत्नेन वंगशुद्धिर्भवेत् ततः।

अथ शीसकशोधनम्ण

सीसकं च तथा कृत्वा वीरद्रुमरसैः पुटात्॥ ३४॥
दद्यादष्टाम्लयोगेन प्रक्षालयेत्प्रयत्नतः।

अथ जसतशोधनम्

यशदं रेतवत्कृत्वा गोमूत्रेण च कल्कितम्॥ ३५॥
उदयास्तमनं यावत् ततः शुद्धं भवेद्भृशम्।
रजतस्यापि पत्राणि कुर्वीतादरतः पुरा॥ ३६॥
स्नुहीक्षीरेम सम्मर्द्य सोमतं लेपयेत्सुधीः।
कक्यां स्वेदयेद् वह्नौ याममात्रं प्रयत्नतः॥ ३७॥
क्षौरेणाज्येन वाग्नौ भिषक् संशोधयेद्।
अतः सा च विशेषेण ध्रुवं योगे च कल्पयेत्॥ ३८॥

वंग शोधन

३३. वंग को भृंगराज=भांगरा के रस में आठ पुट देने से शुद्ध किया जा सकता है।

शीशा शोधन

३४. सीसे का चूर्ण करके वीरद्रुम=मिलाके रस और इमली, कम्लवेत अथवा नीम्बू के रस में आठ-आठ पुट देकर जल से धोने से सीसा शुद्ध हो जाता है।

जसत शोधन

३५. यशद=जस्ते को रेत की भांति चूर्ण करके सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक गोमूत्र में भिगोने से शुद्ध हो जाता है। [रजत शोधन]

३६. रजत=चांदी के पतरे बनाकर स्नुही=थोहर के दूध में मर्दन करके सोमल=संखिया का लेपन करके कवची=मिट्टी की हांडी में डालकर एक याम=प्रहर (तीन घंटे) एक आग पर स्वेदन करे=पकाये।

३८. क्षौर=सिंगरफ, आज्य=घी अथवा मधु के साथ अग्नि पर शुद्ध कर लें। इस प्रकार शुद्ध रजत औषधादि के योग से निश्चय ही रोग दूर करने में समर्थ होता है।

सुवर्णं रेतवत्कृत्वा मृत्पात्रे धारयेद् बुधः।
कुमारी रसयोगेन टंकणेनाथ मर्दयेत्॥ ३९॥
तेनैव रुक्ममालोड्य वह्नियोगेन शोषयेत्।
ततः शुद्धं भवेद्रुक्मं सर्वभेषजकर्मणि॥ ४०॥
अथ वृत्तान्तरं वख्ये (वक्ष्ये) निम्बूफलरसद्रवैः।
मर्दयेच्छोषयेद् धर्मे वार त्रितयपंचकम्॥ ४१॥
मृत्पात्रे च समानीय लेपयेद् शुष्कचुल्यां निधापयेत्॥ ४२॥
तस्योपरि न्यसेत्सूतं तत्र वै गोलकं न्यसेत्।
विधानं पात्रवक्त्रेऽथाधोमुखेन तु धारयेत्॥ ४३॥
सन्धौ तन्मुद्रयेद्यत्नाद् वह्निं प्रज्वालयेत् सुधीः।
उड्डीयोड्डीय तत्सूतं पात्रे लगते निश्चितम्॥ ४४॥
ततः पश्चात्समुद्धृत्य गृहणीयाद् रसमुत्तमम्।
स्नुहीन्यग्रोधयोः क्षीरं तेन सूतं विमर्द्दयेत॥ ४५॥

सुवर्ण शोधन

३९-४०. सोने को रेत की भांति चूरा करके मिट्टी के पात्र में रख दे। पुनः ग्वारपाठा के रस और सुहागे के साथ उसका मर्दन करे। पुनः इसी रस में स्वर्ण को भिगोकर अग्नि पर सुखा लें। इस प्रकार स्वर्ण शुद्ध हो जाता है तथा सभी चिकित्सा कर्मों में प्रयुक्त हो सकता है।

सूत=पारा शोधन

४१-४५. सूत=पारा शोधन की दूसरी विधि कहता हूँ—सूत (पारा) को निम्बू के रस में मर्दन करके धूप में सुखा ले, इसी प्रकार १५ वार करे। पुनः मिट्टी के आधे पात्र में लवण भरकर सूत के टीकड रख दे। उस पात्र पर नीचे की ओर मुख किये हुवो एक मिट्टी के पात्र से ढक दे और दोनों पात्रों के जोड़ को भली भांति कपड़ मिट्टी करके सुखा दे। सूखने पर उसके नीचे अग्नि जलाये। इस प्रकार सूत उड़-उड़कर ऊपर के पात्र के भीतर लगता जायेगा। उस उत्तम रसायन को सावधानी से इकट्ठा कर ले। उस सूत को थोहर और न्यग्रोध वट (बड़) के दूध में मर्दन करके रख लें, यह सभी चिकित्सा कर्मों में उपयोगी है।

एकम तद्रसं कुर्यात्सर्वभेधजकर्मणि।
पुनस्तस्य वक्ष्यामि पृथक् शोधनमुत्तमम्॥ ४६॥
स्नुहीन्यग्रोधयोः क्षीरं तेनसूतं विमर्द्दयेत्।
वारद्वयं त्रयं चाथ गोलभूतं च कारयेत्॥ ४७॥
पूर्वोक्तविधिना सूतं यन्त्रे यत्नेन शोधयेत्।
उड्डीयोड्डीय तत्सूतं विधाने नवलस्पुटम्॥ ४८॥
तद्वद्भस्म भवेत्सूतं प्रयोगोऽयमुदाहृतः।
मारणं च प्रवक्ष्यामि रत्वा तु च समुद्भवम्॥ ४९॥
मृण्मयं पात्रमानीय लेपयेद् वा प्रमृत्स्नया।
पात्रार्द्धं लवणेनैव (सं) पूर्य रुक्मानि धापयेतु॥ ५०॥
चित्रकं वारिणा पिष्ट्वा मध्येपात्रं च विनिक्षिपेत्।
सूतकं च ततो मुत्का सरावे मुखबन्धनम्॥ ५१॥
परितो मृत्तिकालेपः पश्चाद् द्रवस्त्रेण मर्षणम्।
प्रज्वालयेदहोरात्रं सूतं भस्म भवेत्ततः॥ ५२॥
सूतकं गन्धकं कुर्यात् समभागं प्रयत्नतः।
सर्पाक्षीरसतोयेन मर्द्दयेद् यामयामतः॥ ५३॥

४६-४९. पुनः उसी सूत के शोधन की अन्य विधि कहूँगा। स्नुही=थोहर और न्यग्रोध=बड़ के दूध में सूत=पारा को दो वा तीन बार मर्दन करके गोलटिकिया बना ले। और पूर्वोक्त विधि से यन्त्र में शुद्ध कर ले। अग्नि की गर्मी से वह सूत उड़कर ऊपर के पात्र में लग जायेगा, यही सूत की भस्म है।

४९-५२. अब सूत को मारने की=शुद्ध करने की अन्य विधि कहूँगा=मिट्टी का पात्र लेकर उसके चारो ओर शुद्ध मिट्टी का लेप कर दे। उस पात्र के आधे भाग में लवण भर दे। उस लवण पर स्वर्ण के टुकड़े रख दे, पुनः चित्रकमूल को पानी में पीसकर उस पात्र में डाल दे। उस पात्र पर मिट्टी का सराव=ढक्कन रखकर कपड़ा मिट्टी कर सुखाकर उसके नीचे एक दिन-रात अग्नि जलाये तो सूतभस्म हो जाता है।

५३. उपर्युक्त सूत के बराबर गन्धक लेकर सर्पाक्षी=गांजे के रस में एक प्रहर तक मर्दन करे॥

काचकूप्यां रसंक्षिप्त्वा लेपयेद्वा प्रमृत्स्नया।
मृत्तिकाभाण्डमानीय लेपयेत् परितो दृढम्॥ ५४॥
तन्मध्ये बालुका (सं) पूर्य तत्र स्थाप्या पृथक् घृतम्।
सरोवेणोदङ्मुखं वह्निं प्रज्वालयेत् ततः॥ ५५॥
षोडशप्रहरयावद् रससिन्दूरसम्भवम् ।

अथ सिन्दूराभ्रकम्

पूर्वं धान्याभ्रकं कृत्वा बहुछिद्रमय पात्रे॥ ५६॥
कृत्वा च ह्रस्वानि धापयेत् ।
पुनर्नवारसैः पश्चादभ्रकं मर्द्दयेद दृढ़म्॥ ५७॥
रोटिकां यत्नतः कृत्वा छिद्रेपात्रे निधापयेत्।
तस्योपरि निधायाथ वहनिं प्रज्वालयेत्सुधीः॥ ५८॥
पञ्चसप्तवाराणि कांजिकेन च सिंचयेत्।
यामत्रयमग्नियोगे सिन्दूराकारमभ्रकम्॥ ५९॥

अथ लौहसिन्दूरम्

आयसं रेतवत्कृत्वा क्षालयेदभयारसेः।
पंकिलं जायते लौहं वहिनयोगेन शोषयेत्॥ ६०॥

५४-५६. काच अथवा मिट्टी के पात्र के चारो ओर भलीभांति मिट्टी का लेपन कर दे। उस आधे पात्र में बालु रेत भरके उस पर उपर्युक्त सूत=पारा और गन्धक रख दे। पुनः ढक्कन बन्द करके कपड़ मिट्टी करे और सोलह प्रहर=अड़तालीस घण्टे (दो दिन-दो रात) तक उस पात्र के नीचे अग्नि जलाये, शीतल होने पर शनैः शनैः निकाल ले, इस प्रकार रस सिन्दूर तैयार हो जाता है।

सिन्दूर अभ्रक

५६-५९. पहले अभ्रक के छोट-छोटे टुकड़े करके पुनर्नवा के रस में उनका मर्दन करे। यत्न से उस अभ्रक चूर्ण की रोटी-सी बनाकर बहुत छिद्रों वाले पात्र में रखकर अग्नि प्रज्वलित कर दे। जलते समय ही पांच-सात बार उस अभ्रक पर काञ्जि का सिंचन करे। इस प्रकार तीन प्रहर (९ घण्टे) तक अग्नि पर रखने से सिन्दूराभ्रक तैयार हो जाता है।

लौह सिन्दूर

६०. आयस=लोहे को रेत की भांति चूर्णित करके हरड़ के रस

निर्गुण्डीरसयोगेन पञ्चाशत्पुटमात्रतः ।
तच्चूर्णं भक्षयेत्प्रज्ञो वह्नियोगेन सत्वरम्॥ ६१॥
शोभनं जायतेदिव्यं सर्वभेषजकर्मणि ।
लोहसिन्दूरसेवस्यात्प्रयोगो दुर्लभो नर्णिाम्॥ ६२॥
हिंगुलगन्धकाभ्यां च शुल्वपत्राणि लेपयेत्।
अजादुग्धाग्नियोगेन ताम्रभस्म भवेद्ध्रुवम्॥ ६३॥
नागपत्राणि कुर्वीत पलत्रितयमात्रतः ।
त्रिफलासैन्धवं तुल्यं कवचां ज्वालयेद्भिषक्॥ ६४॥
नागस्य सिद्धिरेतस्मान्नान्यस्मात्सिद्धिरिष्यते।
करीषद्वयमध्ये च वंगपत्राणि धारयेत्॥ ६५॥
वहनौ गजपुटं दद्याद् भस्मी भवति वंगकम्।
कृत्वा वंगस्य पत्राणि कवच्यां धारयेद् भिषक्॥ ६६॥
अर्द्धोर्द्धमजमादेया पत्रामि परिवेष्टयेत् ।
मृत्तिकालेपनं पश्चात्परितो यत्वनत् सुधीः॥ ६७॥
वहनौ गजपुटे दत्वा ततः पश्चात्समुद्धरेत्।
भस्मी भवति तत्सर्वं शंखचूर्णनिभं भवेत्॥ ६८॥

में भिगोये। उस गीले लौहचूर्ण को अग्नि पर रखकर सुखाले।

६१-६२. पुनः निर्गुण्डी=सम्भाल के रस में भावना देकर अग्नि में पचास पुट देने से लौहसिन्दूर तैयार हो जाता है। औषधकर्म में यह दिव्य कार्य करता है। इसका प्रयोग करने वाले मनुष्य दुर्लभ होते हैं।

६३. शुल्व=ताम्बे के पत्रों पर हिंगुल और गन्धक का लेप कर दे। बकरी के दूध में उन ताम्रपत्रों को खरल करके अग्नि में जलाने से ताम्रभस्म तैयार हो जाती है।

६४-६५. ४२ माशे=साढ़े तीन तोले (लगभग साढ़े अड़तीस ग्राम) नाग के पतले ले ले। इनके बराबर तौल में त्रिफला और सैंधा नमक लेकर मिट्टी के पात्र में सबको रखकर अग्नि में जलाने से नाग भस्म सिद्ध हो जाती है।

६६-६८. करीष=जंगल में सूखे हुये गोबर के मध्य वंग के पतरों रखकर गजपुट के द्वारा अग्नि में भस्म करने से वंगभस्म तैयार हो जाती है। द्वितीय प्रकार—वंग के पतरे बनाकर उन पत्रों पर कौंच का लेप करके उन पतरों को मिट्टी के पात्र में रखकर उस पात्र को

वल्कानि पुरा गृह्यात्पश्चाल्लेप्याथ वस्त्रकैः।
त्रैपुटे वंगपत्राणि मध्येमुक्ताथ वेष्टयेत्॥ ६९॥
वहनौ जगपुटे दत्त्वा भस्मी भवति तत्क्षणोत्।

अथ रौप्यभस्म

रजतं रेत्वत्कृत्वा युक्तमिंगुलगन्धके॥ ७०॥
पूर्ववद् वहिनयोगेन भस्मी भवति शोभनम्।

अथ सुवर्णभस्म

सौवर्णं रेतवत्कृत्वा कांचनालरसप्लुतम्॥ ७१॥
गंजुकातैलयोगेन पुटं दद्यातथा तयोः।
पंकिलं जायते सुवर्णं यामद्वितयमात्रतः॥ ७२॥
नागपत्राणि कुर्वीत वेधयन्ते कण्टकैर्यथा।
वीरद्रुममूलरसेनाग्नियोगेन भावयेत्॥ ७३॥
सप्तप्रस्थमितः पात्र..........र्घयेत्सुधीः ।
एवं वहनिप्रयोगेन भस्मीभवति नान्यथा॥ ७४॥

चारो ओर से कपड़ मिट्टी करके गजपुट विधि से अग्नि में जलाने से शंखचूर्ण की भांति श्वेत रंग की वंगभस्म बन जाती है।

६९-७०. वंग के पतरे लेकर मिट्टी के पात्र मे भरकर पात्र को कपड़ मिट्टी करके गजपुर विधि से अग्नि से जला दे, इसी प्रकार तीन पुट देने से वंग भस्म बन जाती है।

रौप्य=रजत (चांदी) भस्म

७०-७१. चांदी का चूरा बनाकर हिंगुल और गन्धक के सात मर्दन करे, अच्छी प्रकार घुट जाने पर गजपुट विधि से अग्नि देने से चांदी की भस्म तैयार हो जाती है।

स्वर्ण भस्म

७१-७२. सोने को रेत की भांति चूर्णित करके कचना के रस में मर्दन करे। तदनन्तर गुंजा=चिरमटी के तैल में छः घण्टे तक मर्दन करे, इस प्रकार स्वर्ण का चूरा पंकिल=कीचड़ की भांति हो जायेगा, उसे सुखाकर मिट्टी के पात्र में भरकर कपड़ मिट्टी करके अग्नि में जलाने से स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है।

७३-७४. नाग के पतरों में छलनी की भांति छोड़कर के वीरद्रुम=मिलावे के रस में भावना दे अर्थात् शरल करे। इसी प्रकार

कृत्वा रुक्मस्य पत्राणि नालकेन च लेपयेत्।
कवच्यां स्थापयेद् धीमान्-अधो वह्नि प्रदापयेत्॥ ७५॥
ततो दद्यात्प्रयत्नेन भागचूर्णं पुटाष्टकम्।
भस्मी भवति तत्स्वर्णं रसकर्मणि योजयेत्॥ ७६॥
धातूनां मारणं कुर्यादेवं वैद्यो विचक्षणः।

अथ नंदभरः

शिष्यो ब्रूते दामोदरस्य हि ।
रसयोगास्ततोऽप्येवं श्रोतुमिच्छामि सुव्रतः॥ ७७॥

अथ ज्ञानज्योतिरुवाच

शृणु चात्र प्रवक्ष्यामि रसयोगान्यनेकधाः।
जगदेवगुरोः पादप्रसादात् कृपया तव॥ ७८॥
गन्धकं शुद्धसज्जं च एलात्वङ्मुस्तपत्रकम्।
त्रिकटुत्रिफलाचित्रमुलं च रेणुकं तथा॥ ७९॥
लौहचूर्णं विडंगानि लवणं ताभ्रभस्मकम्।
नागकेशरभाडंगी विषं मागधिमूलकम्॥ ८०॥

सात सेर रस की भावना दें, तदनन्तर जगपुट विधि से अग्नि देकर नाग भस्म तैयार की जाती है।

७५. रुक्म=सोने के पतरे बनाकर उनपर नालक=नारियल का लेप करके कवची=मिट्टी के पात्र में रखकर उसके नीचे अग्नि प्रज्वलित करदे। (यह एक पुट हो गई।)

७६. इसी प्रखार आठ वार पुट देने से स्वर्णभस्म तैयार हो जाती है, इसे रस आदि के निर्माण में प्रयुक्त किया जा सकता है। उसी प्रकार उपर्युक्त विधि से धातुओं का शोधन चतुर वैद्य को करना चाहिये।

अथ नन्दभर

७७. दामोदर के शिष्य ने कहा—

हे सुव्रत गुरो! अब मैं आपसे रस योगों के विषय में सुनना चाहता हूँ। (आयुर्वेद शास्त्र में पारा-गन्धक से युक्त औषध तथा किसी रस की भावना देकर कभी न बिगड़ने वाली औषधि को रस कहते हैं)।

७८-८२. अब ज्ञान ज्योति जी कहते हैं—हे शिष्य सुनो! प्रभु की कृपा से मैं तुम्हारे लिये अनेक प्रकार के रस योगों का वर्णन करता हूँ—

समचूर्णं समभागानि मेलयेद्द्विगुणं गुडम्।
पुराणं मर्द्दयेद्धीमान् गुटिका बन्धयेत्ततः॥ ८१॥
कुबेराक्षिसमानाश्च वैद्यो विद्याविशारदः।
भक्षयेत्प्रत्यहं चैकां हरेद् व्याधीननेकशः॥ ८२॥
क्षयाश्मरीमहावात पञ्चगुल्मान्निहन्ति वै।
अष्टादशानि कुष्ठानि ग्रहणी च विशेषतः॥ ८३॥
हन्ति योग प्रयोगेन विसूची विषमज्वरान्।
उन्मादभ्रमणं शैत्यं श्वासकास विनाशनम्॥ ८४॥
बन्ध्यागर्भमवाप्नोति क्षयो गण्डगलग्रहान्।
अर्शांसि सन्निपाताश्चं योनिभगं च वृद्धिकाम्॥ ८५॥
कृच्छालं नेत्रभगं नेत्ररोगाष्टकं हरेत्।
अरुचिपीनसं हन्ति मूत्रकृच्छ्र भगंदरैः॥ ८६॥
मुखनिःसृतजिहवां च कण्डूपाण्डुविनाशनम्।
मण्डलान् पलितान् हन्ति क्षुधायाश्च विवर्धनम्॥ ८७॥

गन्धक, शुद्ध सज्ज सफेद राल, इलायची की छाल छिलका, मुस्तपत्र=नागरमोथा, त्रिकटु (सौठ, मिर्च, पीपल), त्रीफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला), चित्रमूल=(चित्रकमूल), रेणुक=सम्भालूबीज, लौहचूर्ण=लौहभस्म, बायबिडंग, लवण, ताम्रभस्म, नागकेशर, भाडंगी, विष=वत्सनाभ, मागधीधूल=पीपलमूल, ये सब समान भाग लेकर चूर्ण करके पुराना गुड इनसे दुगुना लेकर उसमें मर्दन करे और घुट जाने पर कुवेराक्षी=रुद्राक्ष के समान गोलियां बना लें। प्रतिदिन एक गोली का सेवन करने से निम्नलिखिथ अनेक प्रकार की व्याधियाँ दूर होती है।

८३-८७. यह ओषधी क्षय=तपेदिक, अश्मरी=पथरी, महावत=वायुरोग, पंचगुल्म=उदरशूल आदि पांच प्रकार के गुल्म=वायुगोला रोग, अठारह प्रकार के कुष्ठ विशेषकर संग्रहणी, विशूची=हैजा, विषम ज्वर=तृतीयक तीसरे चौथे दिन आने वाले ज्वर, उन्माद=पागलपन, भ्रमण=भ्रमरोग, शैत्य=मस्तिष्क का टंडापन, क्षीपाता कमजोरी, श्वास, कास को नष्ट करती है। इसके सेवन से बन्ध्या भी गर्भवती हो जीती है। क्षीपाता कमजोरी गण्डमाला, बवासीर, सन्निपात, योनिभंग=योनिरोग, अण्डवृद्धि, कृच्छ्रल=नेत्रभंग आदि नेत्र के आठ प्रकार के रोग, भोजन में अरुचि, पीनस=नजला, मूत्रकृच्छ्र=रुक-रुककर अथवा

रेतोवृद्धिर्महाप्रज्ञासौभाग्यं सुन्दरं प्रियम्।
बलवीर्यकरं सम्यक् कर्णिकवसमप्रभः॥ ८८॥
षण्मण्डलानिसेवेत जीवेद् वर्षशतानि च।
हरते सर्वरोगांश्च मेधावी च विचक्षणः॥ ८९॥
हयवेगसमानस्तु जायते मानवो नृशम्।
बलनेत्रप्रदीपश्च कामक्रोधविवर्जितः॥ ९०॥
तैलाम्लभोजनं त्याज्यं मध्वन्नं मैथुनं त्यजेत्।
जल्पनं च त्यजेत्प्राज्ञो भोजनं च यथेच्छया॥ ९१॥
नियमेन च यस्तिष्ठेत्तस्य सिद्धिर्न संशयः।
ज्ञानज्योतिर्नवंशास्त्रमीश्वरोक्रमदोऽब्रवीत्॥ ९२॥
नाम्ना मदनविजया ब्रह्मणा भासिता स्वयम्।
गुटिका लोकहेत्वर्थं मया यत्नात्प्रकाशिता॥ ९३॥

इति श्रीमदनविजय

कष्ट से पेशाब आना, भगन्दर मुख से जिह्वा का सदा बाहर निकले रहना, खुजली, पाण्डु=पीलिया और श्वेत कुष्ठ और श्वेत केश=असमय में केशों का सफेद हो जाना आदि रोग नष्ट होते हैं।

८८-९१. इसके सेवन से भूख बल और वीर्य की वृद्धि होकर महाबुद्धिमान्, सौभाग्यशाली सुन्दर और प्रिय हो जाता है। बलवीर्य की वृद्धि होने से कर्णिकच=के समान ओजस्वी हो जाता है। यदि इस औषध का सेवन लगातार छः मास तक करता रहे तो व्यक्ति सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवित रहता है। सभी रोग नष्ट होकर मेधावी और चतुर हो जाता है, मनुष्य घोड़े की भांति वेगवाला हो जाता है। बल बढ़कर नेत्र प्रदीप्त तेजस्वी हो जाते हैं, काम, क्रोध पर विजय पा लेता है। औषध सेवन के समय तैल में पके पदार्थ खटाई, मिष्ठान, मैथुन, व्यर्थ बकना आदि छोड़ दे और यथेष्ट शुद्ध सात्त्विक भोजन का सेवन किया करे।

९२-९३. इस औषध के सेवन समय में जो व्यक्ति नियम से रहे, निःसन्देह उसकी सिद्धि हो जाती है, ज्ञानज्योति आचार्य ने यह नया शास्त्रयोग ईश्वर की कृपा से बताया है। साक्षात् ब्रह्मा ने इस योग को मदन विजय नाम से कहा है। लोक कल्याण के लिये बड़े यत्न से ये गोलियों की विधि प्रकाशित की है।

अथ सुगन्धमोदरसः

भागद्वयं हरीतक्यास्तथाविभीतकस्य च।
एका पञ्चत्रिभागानि वानरीबीजकान्यथा॥ ९४॥
कचूरग्रन्थिभारगी ह्येकभागं च रेणुकम्।
वत्सनागं जटामांसी सामराजी च नेत्रकम्॥ ९५॥
चन्दनं मागधीमूलं मुग्गलं पंचपंचकम्।
जातीफलं चागुरुकं चित्रमूलं त्रयांशकम्॥ ९६॥
चत्वारो भागाश्चव्यस्य त्रिकटूनां त्रयस्य च।
नागकेशरभागं तत्समा च वचा स्मृता॥ ९७॥
पद्मकेशरभागं च समुद्रशोषलोचनम्।
दारुकीबीजभागै कं वाह्लीकं त्रिगुणं स्मृतम्॥ ९८॥
रसगन्धकभागैकं किचिच्चन्द्रं च भावयेत्।
एतत्समं भागचूर्णं वस्त्रपूतं च कारयेत्॥ ९९॥
गुडेन मर्दयेद्धीमान् वटकं कोलमात्रकम्।
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञस्तैलाम्लादीन् विवर्जयेत्॥ १००॥

सुगन्ध मोदरस

९४-९८. हरड़ और बहेड़ा दो-दो भाग, इलायची पन्द्रह (या आठ) भाग, वानरी बीज=कौंच के बीज, कचूर, भारंगी, रेणुक=सम्भाल बीज ये एक-एक भाग, वत्सनाग, जरामांसी, सामराजी=कालाजीरा, नेत्रक=नेत्रवाला ? चन्दन मागधी=मूल और गूगल ये पांच-पांच भाग, जातीफल=जायफल, अगुरुक=अगर चित्रमूल तीन-तीन भाग, चव्य, सोंठ, मिर्च, पीपल चार-चार भाग, नागकेशर वच, पदम्केशर= कमलकेसर, समुद्रसोख, लोचन=वंशलोचन=अजमाण खुरासानी, दारुकीबीज=रसोत ये एक-एक भाग, वाह्लीक=अजभाग खुरासानी, तीन भाग तथा

९९-१०४. रस गन्धक एक भाग लेकर कूटपीस कपड़छान करके कपूर और पुराने गुड़ से मर्दन करे और कोल=शातलचीनी के समान गोलियां बनाले। प्रतिदिन एक-एक गोली का सेवन करे तैल और खटाई छोड़ दें। इसके सेवन से वात, तपेदिक, पथरी, कुष्ठ, गुल्म= वायुगोला, अजीर्ण, हैजा, अरुचि, पीलिया, अंडवृद्धि, भगन्दर, शीतांज

वातक्षयाश्मरीकुष्टगुल्माजीर्ण विशूचिकान्।
अरुचिं पाण्डुरोगं च अण्डवालं भगन्दरम्॥ १०१॥
शीतज्वरं सन्निपातं वमनविषमज्वरम्॥ १०२॥
हिक्कालं जृम्भृणं चैव व्यथाविस्फोटकं तथा।
सर्वरोगाश्च वैहन्ति बलवीर्यकरं परम्॥ १०३॥
रोगिणां चार्थतत्त्वानि निष्पीऽयानन्दकारकः।
कृपया सर्वलोकानां ज्ञानज्योति मव्यधात्॥ १०४॥

इति सुगन्धमोदको रसः॥

अथ वज्रचूर्णम्॥

धान्याभ्रकं लौहचूर्णं लागताभ्रभस्मकम्।
गन्धकं च विषं सूतं नागेनैव च मर्ईयेत्॥ १०५॥
सप्तकं त्रयमेरण्डमूलद्रावेन मर्ह्रयेत्।
निर्धूमाग्निभस्मयोगे स्वेदयेद्यत्नतः सुधीः॥ १०६॥
ततः पश्चात्समुद्धृत्य-आरनालपुटत्रयम्।
मर्ह्रयित्वा विशेषेण शोषयेदातपानले॥ १०७॥

सन्निपात, वमन=कै विषम ज्वर, उन्माद, संग्रहणी, पीनस=नजला, मूत्रकृच्छ्र, हिचकी, जम्भाई आना कष्टदायक भयंकर फोड़े आदि सभी रोग नष्ट होते हैं तथा बल वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है। रोगियों के यह औषधि रोग दूर करके आनन्द प्रदान करती है। सब लोगों के उपकार के लिये ज्ञानज्योति आचार्य ने यह औषध का योग दिया है।

वज्रचूर्ण

१०५. धान्याभ्रक अभ्रकभस्म, लौहचूर्ण, नागभस्म, ताम्रभस्म, गन्धक विष=वत्सनाभ, सूत=पारा शुद्ध को सममभाग लेकर नागबला के रस में मर्दन करे।

१०६-११०. तेदैनन्तर एरण्ड की जड़ के रस (वा क्वाथ) में इक्कीस वार मर्दन करे। पश्चात् निर्धूम अग्नि में भस्म विधि से सुखा ले, पुनः आरनाल=गेहूँ के पानी की तीन पुट=भावनायें देकर विशेष रूप में मर्दन करके धूप में अथवा अग्नि पर सुखा लें। समस्त चूर्ण के आधे के बराबर त्रिफला, त्रिकुट और मुस्ता=मोथा के क्वाथ में एक मुहूर्त्त=१ घंटा १५ मिनट तक अग्नि पर पकाये। इस औषध को दो

त्रिफलां त्रिकुटं मुस्तां योजयेदर्धभागतः।
अग्निभागेन विष्पाद्य मुहूर्त्तेन समुद्धरेत॥ १०८॥
द्विगुञ्ज भक्षयेद् धीमानुष्मावातादिवर्जितम्।
कटुतैलाम्लकत्यागी वर्जयेन्मार्ग मैथुने॥ १०९॥
कुष्ठक्षयमहावातोन्मादकं विषमज्वरम्।
किंचात्र बहुनोक्तेन सर्वव्याधीन् हरेद् ध्रुवम्॥ ११०॥

अथसन्निपातमृत्युञ्जयो रसः

विषगन्धकसूतं च पित्तं मत्सावराहयोः।
अजामपूरयोः पित्तं माहिष्यमपि योजयेत्॥ १११॥
तालत्रिकटुसोमलं च वानरीबीजसंयुतम्।
अषामार्गं चित्रमूलं जयपालं च मेलयेत्॥ ११२॥
एतत्सर्वं समासेन-अजामूत्रेण मर्द्दयेत् ।
माषान्नसदृशीकार्या गुटिका वैद्यकोविदैः॥ ११३॥
महाज्वरेमहाशीते तथाऽशीते ज्वरेऽपि च।
तथागते सन्निपाते विशूची विषमज्वरे॥ ११४॥

गुना=रत्ती की मात्रा में सेवन करे। गर्मी और वायु से रोगी को बचाये कड़वे, तैलीय पदार्थ, खट्टा, पैदल चलना और मैथुन का त्याग करे। इसके सेवन से कुष्ठ, तपेदिक, महावात, उन्माद और विषमज्वर आदि अधिक क्या है। व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं यह वज्रधातुमहाचूर्ण स्वयं ब्रह्मा जी ने तैयार किया था।

सन्निपात मृत्युंजय रस

१११-११२. विष=वत्सनाभ, गन्धक, सूत=पारा, मत्स्य=मछली और वराह=सूअर का पिता (उरजलग्रन्थि) अजा=बकरी, और महिषी भैंस का पित्ता, ताल=हरताल, त्रिकुटा=(सोंठ, मिर्च, पीपल), सोमल=शुद्ध संखिया, वानरी बीज=कांच के बीज, अपामार्ग, चित्रकमूल, जमालघोटा, ये सब ओषध समभाग लेकर मिला लेवें।
११३. बकरी के मूत्र में मर्दन करे। भली भांति घुट जाने पर उड़द के बराबर गोलियां बना लें।

११४-१२०. इस औषध के सेवन से महाज्वर, महाशीत ज्वर, अशीत ज्वर, सन्निपात, हैजा, विषमज्वर तथा एक दिन के असाध्य ज्वर

असाध्ये मनुजे युञ्जादेकाहज्वरं नाशयेत् ।
जलोदरे च शिथिले नाशे अविनि पीनसे ॥ ११५ ॥
अजीर्णमूर्च्छनाभागे श्लेष्मवाते चिरे ज्वरे ।
शोफकामलपादि शैत्यरोमापहारकाः ॥ ११६ ॥
मृत्युञ्जयः सन्निपातरसोनाम्ना उदाहृतः ।
शृगवेररसेनाथ रसराजः प्रदीयते ॥ ११७ ॥
निर्वाते निर्जरे स्थाने......वंश समावृत्तः ।
प्रस्वेदः क्षणमात्रेण जायते चिह्नमीदृशम् ॥ ११८ ॥
मूर्च्छितः पतितो भूमौ घूर्णमानः पुनः पुनः ।
एवं चिह्न समालोक्य त्वन्यथा संशयस्य च ॥ ११९ ॥
पथ्यं दद्या ते रोगी तदा दातव्यं प्रयत्नतः ।
दध्यादेनं शीतजलं देयं वैद्य विचक्षणैः ॥ १२० ॥
एवं महारसं शम्भु स्वयं प्रेरितवान् भुवि ।
कृपया सर्वझन्तूनां ज्ञानज्योतिरुदाहृतः ॥ १२१ ॥

इति सन्निपातमृत्युञ्जयरसः

मरीयानि समानीय महिषीपित्तमध्यतः ।
शोषयित्वाऽतपे दत्त्वा ततः पश्चात्समुद्धरेत् ॥ १२२ ॥

भी दूर हो जाता है। जलोदर=शिथिल पेट (पानी से भरे) अविनिथीनस= नजला, अजीर्ण, मूर्च्छना, श्लेष्म और वात से युक्त पुराना ज्वर, शोफ=सूजन, कामला=विकृतपाण्डु=पीलिया रोग, शैत्यरोम=इन रोगों में भी यह मृत्युंजय सन्निपात रस नाम औषध अत्यन्त उपयोगी है। श्रृगवेर=अदरक के रस में साथ यह औषध यदि निर्वात एकान्त स्थान में दी जाये तो क्षणमात्र में ही पसीना आ जाता है। यह इसकी पहचान है। यहि रोगी भूमि पर मूर्च्छित पड़ा हो, घुरघुराहट के साथ स्वास चल रहा हो ऐसी अवस्था में भी यह औषध बिना संशय के दी जा सकती है। दही, चावल और ठंडापानी का पथ्य करे।

१२१. आचार्य ज्ञानज्योति कहते हैं कि स्वयं भगवान् शंकर ने वह उपर्युक्त महारस सब प्राणियों के हित के लिए प्रेरित किया अर्थात् प्रचलन किया प्रचार किया था।

१२२-१२६. काली मिर्च लेकर उन्हें महिषी के पित्ते में डाल दे, अच्छी प्रकार भीग जाने पर धूप में सुखा लें। इसे अश्वगन्ध और

अश्वगन्धावत्सनागरसैर्दद्यात्पुटं बुधः ।
टंकणं वारिणा पिष्ट्वा ततो दद्यात्तथागये ॥ १२३ ॥
हरितालं तथा दत्त्वा धतूरस्य फलं तथा ।
भृंगराजरसं दत्त्वा शोषेयेदातषे सुधीः ॥ १२४ ॥
मधुनाऽपि तथाशोष्य सर्वयामचतुष्टयम् ।
शोषयेन्महिषीपितं महिषीसप्तमादरात् ॥ १२५ ॥
चतुर्दिनवराहस्य मत्स्यपित्तं दिनद्वयम् ।
एवं सुमधुना कृत्वा शुष्कीभूतानि कारयेत् ॥ १२६ ॥
एकैकं दापयेद्धीमान् रोगोमो वैद्यतत्ववित्।
असाध्ये मानवे दधात्सन्निपाते समाकुले ॥ १२७ ॥
महाज्वरे शैत्यपाते शून्ये भूतेव तिष्ठति ।
अदृष्टे सन्निपाते च जलोदरमहोरुजि ॥ १२८ ॥
पादे पादाभावे शोके महाहिमसमागमे ।
दिगम्बरे तथा काशवाशीनेऽपि प्रशम्यते ॥ १२९ ॥
जलप्रतरणे वाथ पवने वायुगहवरे ।
दुद्रतृते च महावाते सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १३० ॥

वत्सनाभ रस की भावना दें, पुनः सुहागा को पानी में पीस कर उसकी भावना दें। पुनः हरताल को पानी में पीस कर उसकी भावना दें। तदनन्तर धतूरे के रस तथा भृंगराज के रस की भावना देकर धूप में सुखा लें, इसी प्रकार मधु (शहद) अथवा महुआ के रस की भावना देकर धूप में सुखा लें। ये भावनायें ४-४ प्रहर (१२-१२ घण्टे) तक देनी है। इस प्रकार भावना देकर सूख जाने पर सात दिन तक महिषी के पित्ते में मर्दन करे चार दिन वराह (सूअर) के पित्ते में तथा दो दिन तक मछली के पित्ते में मर्दन करके शुष्क करले।

१२७-१३०. इसके सेवन से मानव का असाध्य सन्निपात, महाज्वर, शैत्यपात=शरीर का तापमान सर्वथा शून्य हो जाने पर अदृष्ट सन्निपात, जलोदर महारोग, अतिशीतलता के कारण पैर होते हुए भी पैरों का न होने जो भयंकर बर्फ में विना वस्त्र के खुले आकाश में कोई व्यक्ति रह जाये तो ऐसी अवस्था में भी व्यक्ति ठीक हो जाता है। जल में बहुत अधिक तैरने पर, भयंकर आँधी तूफान में आदि से उत्पन्न रोग में भी लाभदायक है।

रोगिणे रोगशान्तिः स्यादेकैकस्य च भक्षणात्।
कालं च वंचयत्येति यदा पाखण्डिनो नराः ॥ १३१ ॥

अथ महाज्वरमरीचि प्रयोगः

इति प्रकाशिनो योगो ज्ञानज्योतिः यतीश्वरः

विषगन्धकसूतानां त्रयो भागः प्रकीर्तिताः।
भागं कनकबीजस्य व्यौषस्य द्वितयं स्मृतम्॥ १३२॥
एतत्सर्वं समाचूर्ण्य शृंगवेरसमन्वितम् ।
गुंजाइयं प्रदातव्यं सन्निपातसमागमे
रसोज्वरांकुशो नाम ज्ञानज्योतिरुदीरितः ॥ १३३ ॥

अथ महाकल्पः

रसगन्धकयोर्भाग गन्धमूलरस तथा ।
तत्समं मर्द्दयेत् प्राज्ञो भाण्डे यत्ने निधापयेत्॥ १३४॥
भूमौ निधापयेन्मासं ततः पश्चात्समुद्धरेत्।
गुटिकामुद्गमानेन भक्षणीयादिनेदिने ॥ १३५ ॥

---

१३१. इस औषधि की १-१ मात्रा के सेवन से भी रोगी काल को भी जी लेता है।

(इति) महाज्वर मरीचि प्रयोग

१३२-१३३. विष=वत्सनाभ, गन्धक और सूत ये तीनों शुद्ध करके तीन-तीन भाग लें, धतूरे के बीज एक भाग, व्यौष=सौंठ दो भाग लेकर महीन चूर्ण कर लें। दोस्ती (दो गुंजा=चिरमठी) मात्रा दवा शृंगवेर=अदरक के रस से देने से सन्निपात रोग ठीक हो जाता है। आचार्य ज्ञानज्योति ने यह ज्वराकुश नामक योग कहा है।

अथ महाकल्प

१३४-१३५. पारा-गन्धक को समभाग लेकर गंध=सुपझनामूल= सोझना के रस में मर्दन करके पात्र को एक मास तक भूमि में दबा दे, पुनः निकालकर मूंग के दाने के बराबर गोली बना लें और प्रतिदिन १-१ गोली का सेवन करें। छः मास तक निरन्तर सेवन करने से महाकल्प हो जाता है।

षणमासं भक्षणं नर्णिां महाकल्पोभवेद्ध्रुवम्।

स्वच्छन्दभैरवः

विषगन्धकसूतानां समभागाः प्रकीर्तिताः॥ १३६॥
जातीफलस्य भागार्द्धं ततः कुर्याच्च कज्जलम्।
सर्वार्द्धं मागधीचूर्णं शोषयित्वातपे दृढम्॥ १३७॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं भक्षेन्नागवल्लीदलीन्वितम्।
विबेदुष्मोदकं पश्चाद् दधि भुङ्क्ते च भोजने॥ १३८॥
श्रीतोदकं तथा देयं एवं व्याधिक्षयो भवेत्।
श्रीतज्वरे सन्निपाते विशूच्यां विषमज्वरे॥ १३९॥
पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च शिरोरोगे च दारूणे।
स्वच्छान्दभैरवो नाम रसराजः प्रकाशित॥ १४०॥

अथ लिंगलेपः

चन्द्र मधुरसं नीत्वा मर्द्दयेदयत्नतः सुधीः।
लिंगलेपकरः प्रोक्तः कामुकागर्वभञ्जकः॥ १४१॥

स्वच्छन्द भैरव रस

१३६. विष=वत्सनाभ, गन्धक और सूत=पारा समान भाग लें। इन सबके परिमाण का आधा जातीफल=जायफल का चूर्ण लेकर कज्जली बना लें।

१३७-१४०. इस कज्जली के आधे भाग के बराबर भाग घी=मघा=पीपल का चूर्ण मिलाकर धूप में सुखा लें। इसमें से २ या ३ रत्ती दवा नागरवेल पान के पत्ते के साथ प्रतिदिन खाये और ऊपर से गर्म पानी पिये। भोजन में दही का सेवन करे तथा ठंडा पानी पीये। इसके सेवन से शीतज्वर, सन्निपात, हैजा, विषमज्वर, नजला, मूत्रकृच्छ्र और भयंकर सिरदर्द ठीक हो जाता है, यह स्वच्छन्द भैरव नामक रस रज कहा जाता है।

लिंगलेप

१४१-१४३. चन्द्र=कपूर और मधु को उचित मात्रा में लेकर यत्नपूर्वक मर्दन करे। इसे लिंग पर लेप करके रत होने से कामुक स्त्री का घमण्ड भी दूर हो जाता है। इस विधि से स्त्रियाँ शीघ्र द्रवित

द्रावकः सत्वरं स्थीणामतिवश्यकरः क्षणात्।
कर्पूरं टंकणं सूतं मुनिदमद्रवप्लुतम्॥ १४२॥
त्रितयं मर्द्दयित्वाथ लिंगलेय उदाहृतः ।
प्रक्षालनेन लिंगस्य सजोभावो भविष्यति॥ १४३॥

वातपित्तज्वरनाशकयोगः

थोसं हरीत की चूर्णं गुडपाकेनबंधयेत्।
ऊर्ध्वपित्तं तथा छर्द्दिं हरेद् दोषमनेकधा॥ १४४॥
निम्बत्वक् काकजंघा स्यान्मत्स्याक्षिगोरटिका तथा।
युक्त्वा तदूरसमुत्पाद्य निक्षिपेत्तत्र शर्करा॥ १४५॥
दिनत्रयं पंचकं वा पिबति च नरोत्तमः।
वातपित्तज्वरस्तेषां हन्यते नात्र संशयः॥ १४६॥

अथ प्लीहज्वरः

अपामार्गस्नुहीभानुक्षारंत्रितयकं व्रजेत् ।
जातीफलं लवंगानि कटुत्रयस्ततः परम्॥ १४७॥
विडालपदमात्रं च भक्षयेत्प्रति वासरम्।
हरते सर्वरोगाश्च भस्मराजो विधीयते॥ १४८॥

होकर तत् क्षण वश में आ जाती है। कपूर, सुहागा और सूत=पारा को समभाग लेकर मधु में तीन बार मर्दन करे, इसका लिंग पर लेप करें, पुनः लिंग धो देवे, ऐसा करने से लिंग फूल जायेगा।

(वात्तपित्तज्वर नाशक योग)

१४४-१४५. व्योष=सौठ, हरड़ का चूर्ण लेकर गुड़ की चाशनी में गोली बना लें। इनके सेवन से ऊर्ध्व भाग का पित्त तथा वमन रोग का नाश होता है। नीम की छाल, काकजंघा, मत्स्याक्षी=ब्राह्मी, गोरंटिका= भांखड़ी के रस में पीस कर उस पर शर्करा=शक्कर मिला दें।

१४६. इसे तीन बार पांच दिन तक पीने से वात पित्त ज्वर निस्सन्देह दूर हो जाता है।

प्लीहा ज्वर

१४७-१४८. अपामार्ग, थोहर और आक इन तीनों का क्षार लेकर उसमें जायफल, लौंग और त्रिकुटा उचित मात्रा में मिला दें। इसे प्रतिदिन विडालपदमात्र=डेढ़ माशा दवा जल के साथ सेवन करने से प्लीहा= तिल्ली गत सभी ज्वरों को ठीक कर देता है। इसे भस्मराज भी कहते हैं।

अथ पल्लीहप्रयोगः

निम्बूफलानि पात्रस्य मध्ये क्षिप्त्वा समाहरेत्।
मध्येऽपामार्गमास्तीर्य तस्योपरि फलानि च॥ १४९॥
अपामार्गं तथा स्नुही स्तीर्याद्भस्म सुभोभनम्।
चच्चूर्णं भक्षयेन्नित्यं क्षयो वातज्वरादिकम्॥ १५०॥
प्लीहकासं च श्वासं च पाण्डु चैवारुचिं हरेत्।
गुल्मीजीर्ण गुल्मवात कण्डूमपि हरेतथा॥ १५१॥
भस्मराजस्तु नाम्नैव सुसेव्यो नृपसत्तमैः।

अथ मदनचूर्णम्

रजनीत्वगपामार्गमश्वगन्धा च जीरकम्॥ १५२॥
भृंगराजशतावर्य्यो पाठाशाल्मलिजं फलम्।
विजया सहदेवी च हसीस्मीगिरिकर्णिका॥ १५३॥
बचाचित्रफलाकुष्ठं बृहती वृद्धादारुका।
त्रिकटुं च त्रयः क्षारा काश्मीरीमदमोदिका॥ १५४॥

प्लीहा रोग का योग

१४९-१५१. एक पात्र में निम्बू काटकर सुखाकर डाल दें, उन निम्बुओं के ऊपर अपामार्ग बिछा दें, उस अपामार्ग पर पुनः निम्बू रख दे, उन पर पुनः अपामार्ग और थोहर (स्नुही) बिछा दें। इसी अवस्था में उसकी भस्म कर लें। इस चूर्ण वाभस्म को नित्य सेवन करने से क्षय=तपेदिक, वातज्वर, तिल्ली से उत्पन्न खांसी और श्वासरोग, पीलिया, अरुचि, गुल्म=उदरशूल, अजीर्ण, वायुगोला (अफारा), कण्डू=खाज खुजली रोग नष्ट हो जाते हैं, इसे भस्मराज भी कहते हैं। इसकी मात्रा एक माशा है, इसे गर्म पानी से लेना चाहिए।

मदनचूर्ण

१५२-१५७. रजनीत्वक्=हल्दी, त्वग्=तजपत्र=तेजपात=दशावरी अपामार्ग, असगन्ध, जीरा, भृंगराज, शतावरी, पाठा, सेमल का फल, विजया=भांग, सहदेई, हंसास्मी=हंसराज, गिरिकर्णिका=अपराजिता बच, चित्रफला=चित्रकफल, कुष्ट=कौड़, बृहती=बड़ी कंटकारी, वृद्धादारुका=रसोंत, त्रिकुटा, तीनों क्षार=सज्जी-मूली (अथवा यवक्षार)

धातुकीचित्रमूलं च ब्राह्मी मार्गी च गोक्षुरा।
ब्रह्मदण्डी तिलापर्णी ब्रह्मबीजप्रसूनकम्॥ १५५॥
कुमारीवन्ध्यकफलं कुबेराक्षीकरंजकम्।
एतानि समभागानि शुष्कचूर्णानि कारमेत्॥ १५६॥
वस्त्रपूतानितत्रैव नवभाण्डे निधापयेत्।
तच्चूर्णं भक्षयेन्नित्यं कामलाश्वेतपाण्डुरा॥ १५७॥
बलवीर्यागदीर्घायु चोक्तज्ञानयतीश्वरैः ।
निम्बत्रयं समानीय तत्पर्णानि च मूलकम्॥ १५८॥
त्रिकटुकेन समायुक्तं चूर्णं कृत्वाविचक्षणः।
तच्चूर्णं भक्षयेन्नित्यं सर्वदोषापहारकम्॥ १५९॥
कल्पायुर्वर्द्धते तस्य दुग्धभोगी जितेन्द्रियः।
वन्ध्याकर्कोटका पाठा जलस्थं भावतः पराम्॥ १६०॥
तिसर्णिां मूलमादाय खंडमरीचितु तत्क्षिपेत्।
उदकेन समं पेष्यं पाययेद् वैद्यकोविदः॥ १६१॥
स्थावरं जंगमाग तु विसं पानादिनाशनम्।
गुदयोनिव्याधिहरी सर्वरोगापहारकः॥ १६२॥

और सुहागा (तेलिया), कश्मीरीमद–मोदिका=अजमोद, धातकी=आंवले, चित्रमूल, ब्राह्मी, भार्गी=अजवायन, गोक्षुरा=भाखंडी, ब्रह्मदण्डी, तिला–पर्णी, ब्रह्मबीज=ढाक के बीज, फूल कुमारी=गवारपाठा, बन्ध्यकफल=ककौड़े, कुबेराक्षी=रुद्राक्ष, करंजगिरी ये समभाग लेकर इनका चूर्ण कपड़छान करके नये मिट्टी के पात्र में रख लें। इस चूर्ण के नित्यसेवन से बल वीर्य बढ़कर अंग दृढ़ और पुष्ट होते हैं तथा दीर्घायु होती है।

१५८–१५९. तीनों नीम=नीम, जलनीम, चिरायता के पत्ते और जड़ तथा त्रिकुटा ये समभाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण का नित्य सेवन करने से दीर्घायु होती है तथा सभी रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन समय केवल दूध का ही सेवन करे तथा जितेन्द्रिय रहे।

१६०–१६१. वन्ध्या=ककोड़े, पाठा, जलस्थ=फोम जलजमनी, इन तीनों की जड़ लेकर पीसकर उसमें खांड और कालीमीर्च मिला दें, पानी के साथ पीसकर पिला दें।

१६२. इसके पीने से स्थावर, जंगम दोनों प्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं। गुदा और योनि की पीड़ा को भी शमन करता है।

पाषाणप्रमेहस्यौषधार

कुलत्यान्नमहाराष्णी वारिणा सह कल्कयेत्।
पीत्वा कृत्तकक्षयं च बद्ध मोक्षं प्रजायते॥ १६३॥

पुनः प्रमेहस्य

तिन्दुबीजंमरीच च मृणालगर्द्दस्य तण्डुलाः।
अजादुग्धेन सितया समं पीत्वा प्रमेहनुत्॥ १६४॥
पयसा शाल्मलीद्रावं मरीचानि पिवेन्नरः।
नाशं विंशतिमेहानां कुरुते तस्य भक्षणात्॥ १६५॥
गांगेरुकी रुदन्ती च गन्धदूर्वाजवासकः।
सम शृंगाटक चैव शर्करासर्वसम्मिता॥ १६६॥
हन्ति विंशतिप्रमेहांश्च चूर्णं कर्षप्रमाणतः।
त्रिसिन्दुरं समं कुर्यात्सवत्स्याक्षीरयोगतः॥ १६७॥
सर्प्याक्षीसमभागेन प्रमेहान् विंशतिः हरेत्।

अथ ग्रहणीप्रयोगः

मोचरसं बदरी च सर्विश्च पयसा युतम्।
हरते ग्रहणी त्वष्टौ त्रानज्योतिरुदाहृतान्॥ १६८॥

पाषाण प्रमेह=पथरी की औषधि

१६३. कुलथी और चोपचीनी को पानी के साथ पीसकर कल्क बना ले। इसे पीने से पथरी इस प्रकार नष्ट हो जाती है। जैसे—

प्रमेह नाशक योग

१६४-१६७. तिन्दुबीज=कद्दू के बीज, काली मिर्च, कमल फूल के चावल=बिस, इनको बकरी के दूध में मिश्री के साथ पीसकर पीने से प्रमेह नष्ट होता है। सफेद और काली मूसली का द्राव=घोल काली मिर्च और दूध के साथ पीने से बीस प्रकार का प्रमेह नष्ट होते हैं।

गांगेरुकी=करड़ी=रुदन्ती, गन्ध=सुणझणा=सोहजना, दूर्वा=दूव (घास) अजवासक=धमासा और शृंगाटक=भाखड़ी समभाग लेकर चूर्ण कर लें, इनके बरावर मिश्री मिला लें। इस चूर्ण की एक=छह माशे मात्रा बछडेवाली गाय के दूध से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

ग्रहणी रोग का योग

१६८. मोचरस (संवाचण का रस) बदरी=बेर और घी मिला हुआ दूध इनका सेवन आठों प्रकार की ग्रहणी को दूर करता है।

दाडिमीबकुलं ग्राह्यं गन्धमोचरसं तथा।
क्षीणोभक्षयेद्धीमान् अतीसारग्रहं रहेत्॥ १६९॥
बृहतीफलबीजानि घृतेन सह भर्ज्जयेत्।
दुष्टनशविनाशं च जायते कृत्तितत्क्षणात्॥
एतच्चामत्कारकरं ज्ञानज्योतिरुदाहृतम्॥ १७०॥

कुनशनाशनम्

बावचीसारसं बीजं जातीफलकर्षद्वयम्।
पुंगीफलं तथाकृत्वा ब्रह्मबीजं पुनस्तया॥ १७१॥
एतानि समभागानि चूर्णीकृत्य प्रयत्नतः।
करकस्य मुखं छाय सछिद्रं मुद्रयेन्मृदा॥ १७२॥
छिद्रेणैतेन चूर्णं च क्षिप्त्वाग्निं ज्वालयेत्ततः।
नालनार्गेण तत्तैलमुद्धरेच्चौव यत्नतः॥ १७३॥
पामाकण्डूहरं तैलं प्रलेपाद्भाषितं भृशम्।
महानिम्बत्वचं नीत्वा गाव्य दुग्धेनततपिबेत।
सप्ताहात् हन्यते नर्णिां विमूची नात्रसंशयः॥ १७४॥

(अतिसार नाशक योग)

१६९. अनारदाना, मौलवी बीज, गन्ध=सुणझण=साझण, मोचरस (सवाचण का रस) इनके चूर्ण को खाने से अतिसार से क्षीण व्यक्ति भी ठीक हो जाता है।

कुनख नाशक योग

१७०. कण्टकारी के बीज घी में भूनकर पीसकर लेप करने से कुनख=नाखूनों की बीमारी ठीक हो जाती है।

(खुजली नाशक योग)

१७१-१७४. बावची सारस=सिरस के बीज, जायफल १ तोला (२ कर्ष), पुंगीफल=करंज की गिरी या ब्रह्मबीज=पलाश के बीज में चीजें समभाग लेकर चूर्ण करके, मिट्टी के पात्र में एक छिद्र छोड़ कर उसका मुख बन्द कर दें, पुनः उस छिद्र से चूर्ण पात्र में डालकर अग्नि जला दें। नाल लगाकर तैल निकालने की विधि से तैल निकाल लें। यह तैल लगाने से खाज-खुजली तुरन्त ठीक हो जाते हैं। महानिम्ब=बकायन की छाल का चूर्ण सप्ताह तक गोदुग्ध के साथ पीने से कण्डू आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

अथापस्मारनाशनम्

कारीषभस्म संग्राह्य भानुक्षीरेण भावयेत्।
बृहतीरसपुटान्यवं सप्त यत्नेन वैद्यराट्॥ १७५॥
तेन चूर्णेन नासायां नस्यं दद्याद् विचक्षणः।
अपस्मारं हरते तस्य न संदेहो न संशयः॥ १७६॥
तैलं ज्योतिष्मतीजातं कल्कयेद् घटिकाद्वयम्।
ब्राह्मी मुंडी वचाशुंठीपिप्पलीमधुशर्करा॥ १७७॥
कल्कज्योतिष्मतीतैलं भक्षणाद् बुद्धिमान् ततः।
सार्द्रं भृंगरसं ज्योति ब्राह्मी च योगकम्॥ १७८॥
कल्कयित्वा माषमात्रं भक्षमाद् बुद्धिदो भवेत्।
माधे सप्तचतुर्दश्यानाभिमात्रं जले स्थितः॥ १७९॥
पलमेकं भक्षणाच्च रात्रौ रात्रौ विचक्षणः।
वमते यदि नैवस्यानमहाबुद्धिः प्रजायते॥ १८०॥

अपस्मार नाशक योग

१७५. जंगली आरणा=कंडा की भस्म को आक के दूध और कण्डकारी के रस में ७-७ भावना में देकर तैयार कर ले।

१७६. नाक में इस भस्म का नस्य देने से अपस्मार=मृगी रोग दूर हो जाता है।

बुद्धिवर्धक योग

१७७-१७८. ज्योतिषमती तैल, ब्राह्मी, गोरखमुण्डी, वच, सोंठ, पीपल, मधुशर्कर..........

इनको जौ-कुट करके पानी में भिगो दें। अच्छी तरह भीग जाने पर लुगदी बना ले। इस लुगदी को ज्योतिष=मालकंगनी के तैल में पकाकर तैल सिद्ध कर लें। उड़द के दाने जितना यह तैल सेवन करने से बुद्धि बढ़ती है।

१७९-१८२. माघ मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन रात को नाभिपर्यन्त जल में खड़ा रहकर भृंगराज, मालकंगनी और ब्रह्मी बूटी का सेवन एक छटांक की मात्रा में किया जाये और यदि उसका वमन=उलटी नहीं होवे तो रात भर में ही महाबुद्धिमान् हो जाता है।

मेधाप्रज्ञा प्रभाकान्तिस्मृतिधृतिश्च वर्द्धते।
वाणी वागीश्वरी बुद्धि मास्तस्यालये स्थितिः॥ १८१॥
तत्तैलं ते सम्यक् मासमेकं निरन्तरम्।
मेधावी जायते नूनं सर्वशास्त्रविशारदः॥ १८२॥
कवित्वं कुरुतेऽभ्यासात् कवीनामीश्वरो भवेत्।
केतकीवत्सनागेशं ब्राह्मीवासकहंसराट्॥ १८३॥
बावचीभृंगराजारूपो ग्राग्या च ब्रह्मदण्डिका।
एतत्समांशमभागेन सर्पिमधुसितायुतम्॥ १८४॥
षण्मासं भक्षयेद् यस्तु स मेधावी विचक्षणः।
निंबस्यामनकी चूर्णं सर्वन्याधिविनाशनम्॥ १८५॥
कल्पो भवति यत्नेन सेवानान्नात्र संशयः।
त्रिफला च त्रिकटुकं त्रिवृता च त्रिनिम्बकम्॥ १८६॥
चूर्णं समासतः कृत्वा भक्षयेत्कर्षमात्रतः।
हरन्ति सर्वरोगाश्च वलीयलितनाशनः॥ १८७॥

उसकी मेधा, प्रभा, कान्ति स्मृति और घृति बढ़ जाती है। वाणी श्रेष्ठ हो जाती है। यदि उपर्युक्त तैल का सेवन एक मास तक निरन्तर करे तो निश्चय से ही मेधावी और सब शास्त्रों में चतुर हो जाता है। कविता रचन का अभ्यास करे तो शीघ्र ही कवीश्वर भी हो जाता है।

१८३-१८४. बावची, भृंगराज, ब्रह्मदण्डी इनका समान भाग चूर्ण लेकर घी, शहद और मिश्री के साथ छः मास तक सेवन करने से अत्यन्त मेधावी हो जाता है।

१८५.

१८६-१८७. त्रिफला (हरड़ बहेडा, आंवला), त्रिकुटा=सोंठ काली मिर्च पीपल त्रीवी निशोथ त्रिनिम्ब=महानीम बकायन और ये सब समभाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के १ कर्ष=छः मास भर सेवन करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। झुर्रियां नहीं रहती तथा बाल भी काले हो जाते हैं।

अथ भुक्तपाकरसः

गन्धकं सूतकं चैव भृंगराजेन मर्द्दयेत्।
हिंगुभागो विडंगानि रोहिणी च दशांशकम्॥ १८८॥
क्वा त्रिकटुकायुक्ता भागमेकं हि सैन्धवम्।
निर्गुण्डीरस ततो मर्द्य पुटि चामलकं फलम्॥ १८९॥
भोजनान्ते च तद् भक्ष्यं भुक्त्वा पाको महारसः।
सर्वव्याधीन् रहेच्चाथ बलवीर्यविवर्द्धनी॥ १९०॥

अथ तैलविजयः

विंशपावरुणं काष्ठं मदनं कोलकरंजकम्।
भल्लातकं निम्बकाष्ठं दूर्वा कास्मरिका तथा॥ १९१॥
शुष्कान्येतानि काष्ठानि समानीय प्रयत्नतः।
तैलं पातालयन्त्रेण कृत्वा यन्त्रेण धारयेत्॥ १९२॥
दिनद्वयं वातपित्त तस्य दोषं निहन्ति हि।
दद्रुकण्डूविशूचीनां कुर्याच्छूलविनाशनम्॥ १९३॥

भुक्तपाकरस

१८८-१९०. शुद्ध गन्धक और सूतभस्म को भृंगराज रस में मर्दन करे। इनका दशांश हिंगुलः वायबिडंग रोहिणी कौड वचा और त्रिकुटा डाल दें। एक भाग सैन्धा नमक डाल दें। पुनः निगुण्डी के रस में द्योरद करे आमला चूर्ण डाल दें। इसे भोजन के पश्चात् खाया जाये तो भोजन शीघ्र पचकर महारस में परिवर्तित हो जाता है, सब व्यधियाँ दूर हो जाती है तथा बल और वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है।

तैल विजय

१९१-१९२. शीशम, वरणा, मदन=(ओखरोट, कोलक=कोल बेरी, रंजक भिलावा, नीम, दूब, कास्मटिका=पाठा इनकी सूखी लकड़ी लेकर पातालयन्त्र विधि से तैल निकाल लें।

१९३. इस तैल की दो दिन तक मालिश करने से वात पित्त के दोष, नष्ट हो जाते हैं। दाद, खाज और हैजे का शूल भी ठीक हो जाता है।

अथ नेत्राञ्जनम्

हरितालं पिप्पलीबीजं मर्द्यं पुनर्नवारसैः।
मध्वाज्येन पुनस्तत्र कास्ये ताम्रेण धर्षयेत्॥ १९४॥
महिषीशृंगकूप्यां च रक्षणीयं प्रयत्नतः।
लोचने अंजने नित्यं नेत्रदोपापहारकम्॥ १९५॥

पीनसहरयोगः

आनीय बकुलबीजं छगामूत्रेण धर्षयेत्।
नस्यं च दीयते तेन पीनसं हि तत्क्षणात्॥ १९६॥

अथकण्ठमालाहरः

अकुल्या मूललेपेन गण्डमालाविनस्यति।
हरते गण्डदोषांश्च दशाहेन विनश्यति॥ १९७॥

अथ सप्तक्षयकरः

मज्जं च कटुफलाद्याश्च सैन्धवं मधुना सह।
भजे गुञ्जाद्वयं नित्यं सप्तक्षयप्रशाम्यति॥ १९८॥

नेत्रांजन

१९४-१९५. हरताल और पिप्पली के बीजों को पुनर्नवा=सफेद सांठी के रस में मर्दन करे। पुनः उसे मधु और घी के साथ कांसे के पात्र में ताम्बे की किसी चीज से घिसे। सूख जाने पर इस महीन चूर्ण को भैंस के सींग से बनी कूपी (पात्र) में रखकर प्रतिदिन नेत्र में अंजन करे तो नेत्र के सब दोषों का शमन हो जाता है।

पीनस=नजला नाशक योग

१९६. बकुल=मौलसरी=गुलचोन के बीजों को बकरी के मूत्र में मर्दन करे, इस चूर्ण की नस्य देने से नजला तत्क्षण दूर हो जाता है।

कण्ठमाला हर योग

१९७. अंकुली=की जड़ का लेप कण्ठमाला (गल के मरोड़े) पर करने से दस दिन में कण्ठमाला आदि गल के रोग नष्ट हो जाते हैं।

सप्तक्षयकर

१९८. मज्ज=कद्दू के बीज, कटुफल=जायफळ, सैंधा नमकर इनको मधु के साथ २ रत्ती मात्रा लेने से सप्तक्षय=सातधातुक्षयरोग नष्ट हो जाता है।

कर्णी खदिरचूर्णं वा केवलं वा शिलाजितु।
शुण्ठीकणाञ्च चूर्णं च त्रितय कफनाशनम्॥ १९९॥

अथाण्डवृद्धिः

कुटजस्य च बीजानि वल्कलानि तथैव च।
जीरकं मधुपुष्पाणि कल्कयेद् वारिणा सह॥ २००॥
भक्षेयत्प्रातरुत्थाय दिनानां सप्तकत्रयम् ।
आन्त्रेवृद्धि र्महाव्याधीन्नलदोषान् हरन्ति हि॥ २०१॥
शिरव्यथाक्षयोरोगो भ्रमणं शिरकम्पयोः।
गुल्माजीर्णं व्यथागात्रे निहन्ति विविधानि च॥ २०२॥
तृणकाण्डं कमानीय नलव्याप्ति प्रेषयेत्।
त दोषान् हरते सम्यक् सत्यं सत्य वदाम्यहम्॥ २०३॥
तालकं दोलिकायन्त्रे गोमूत्रेण सकल्पयेत्।
कुमारीरसतो मर्घं समभागोऽथशुक्तिका॥ २०४॥
रोटिकां कारयेद् वैद्यो दद्याद्गजपुटौ रवे।
द्वादशप्रहरं यावत् ततः पश्चात्समुद्धरेत्। २०५॥

---

१९९. कर्णी=मधा=पिप्पलीचूर्ण मारवदिचूर्ण, अथवा शिलाजीत

अण्डवृद्धि

२००. कुञ्ज=कूठ के बीज और छाल (कुड़ाछाल), जीरा और महुवे के फूलों को पानी से घिसकर लुगदी बना ले।

२०१-२०२. इस लुगदी का उचितमात्रा में २१ दिन तक प्रात:काल सेवन करने से आन्त्रवृद्धि आदि नालदोष नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से शिर की वेदना, क्षय, भ्रमरोग शिर का कम्पन गुल्म=उदरशूल अजीर्ण तथा अन्य शारीरिक पीड़ायें नष्ट हो जाती हैं।

२०३.

२०४-२०६. वर्किया हरताल को गोमूत्र के साथ दो लिकायन्त्र में पकाकर शुद्ध कर लें। शुद्ध होने पर घीकुमारी (गवारपाण) के रस में मर्दन करे और समान भाग शुक्तिका=सीप मिलाकर रोटी सदृश बनाकर गजपुर विधि से १२ प्रहर=३६ घण्टे तक जलावें, पुन: शीतल

निगर्न्धं वापि निश्चन्द्रं निर्धूमं परिपाकयेत्।
गुञ्जाइयं भक्षणीयं नागवल्लीदलान्वितम्॥ २०६॥
मासमेकं द्वयं वापि दुग्धोदनजितेन्द्रियः।
हरते सर्वरोगानि नात्र कार्या विचारणा॥ २०७॥

अथ कुष्ठव्याधिहरः

बावचीबीजमानीय क्षालयेद्धेनुमूत्रतः ।
आज्येन सह समाहृत्य स्निग्धभांडे निधापयेत्॥ २०८॥
धान्यराशौ मासमेकं स्थाप्य पश्चात्समुद्धरेत्।
भक्षयेत्कर्षमात्रेण कुष्ठं मासदश हरेत॥ २०९॥
सुवर्णपर्णकं कृत्वा द्रावैः समं यत्नेन मर्द्दयेत्।
रसः कज्जलतां याति निर्मले च कटुत्रयम्॥ २१०॥
मर्दन च पुनः कुर्यात् प्रयत्नेन च धारयेत्।
माषार्द्धं भक्षयेन्नित्यं तैलाम्लगुडवजयेत्॥ २११॥
हरते शोकशैत्यं च जलोदरमहोदरान्।

होने पर निकाल लें। इस प्रकार गन्ध रहित चमकरहित तथा श्वेत हो जाने तक सिद्ध करे। इसे दोरत्ती की मात्रा में नागवल्ली=पान के पत्ते के साथ एक वा दो मास तक सेवन करे, दूध=चावल का सेवन करे और जितेन्द्रिय रहे इस प्रकार यह औषध निःसन्देह रोगों का हरण करता है।

कुष्ठ रोग नाशक

२०८-२०९. बावची के बीज लेकर गोमूत्र में भिगोकर धोलें, उसका छिलका उतर जायेगा। गोघृत में उन बीजों को डालकर चिकने पात्र में रखकर एक मास तक अन्न के ढेर में दबा दे। इसे निकालकर १ कर्ष=६ माशा की मात्रा में दस महीने तक सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है।

२१०-२११. सोने के वर्क बनाकर..........रस में मर्दन करे। जब पारे की कज्जली बन जाये तो उसे निर्मलकरके त्रिकुटा डालकर पुनः मर्दन करे। महीन हो जाने पर आधा माशा दवा प्रतिदिन सेवन करे, तैल खटाई और गुड से परहेज करे तो शीतलता जलोदर और बढे हुए पेट को ठीक करता है।

अञ्जनप्रयोगः

सैन्धवं त्रिकटुं निम्बं वासकं रजनी तथा।
पुत्रजीव चित्रमूलं अभया च मनःशिला॥ २१२॥
टंकण नीलमुत्थं च सर्वे चूर्ण समासकम्।
वस्त्रपूतं तत कृत्वा कांस्यपात्रेनिधापयेत्॥ २१३॥
मध्वाज्यं च ततः क्षिप्त्वा ताम्रपात्रे च मर्द्दयेत्।
उदयास्तमनंयावन् नेत्रयोरजने ततः॥ २१४॥
सुदिनेशुभनक्षत्रे प्रयुञ्जीत परीक्षणे।

तैलमञ्जरी

जातीफलं लवगानि कटुत्रितयं कुष्ठकम्।
त्रिफलानिम्बपंचांगमेलात्वकपत्रमेलनम्॥ २१५॥
मुस्ता च पिप्पलीमूलं चित्रकं गिरिकर्णिका।
दशमूलं कुबेराक्षी जीरकं क्काषमीरितम्॥ २१६॥
सैन्धवं ब्रह्मबीज शाल्मली ब्रह्मकन्दकम्।
ब्राह्मी वचा करा पान रोहिणी ब्रह्मदण्डिका॥ २१७॥

अञ्जन प्रयोग

२१२-२१४. सैंधा नमक, त्रिकुटा (सोंठ, काली मिर्च, पीपल), नीमफल की गिरी, कालाबासा, रजनी (हल्दी), पुत्रजीव=जीयापोता, चित्रमूल, हरड़, मैनसिल (शुद्ध), सुहागा, नीलमुत्थ=काला मोथा इनको कूट पीस कपड़खान चूर्ण करें और कांसे के पात्र में घी और मधु मिलाकर रख दें पुनः ताम्बे के पात्र से या ताम्बे के पात्र में इसका मर्दन करे। सूर्योदय और सूर्यास्त समय इसे नेत्र में लगायें, इससे नेत्र के सभी रोग दूर हो जाते हैं।

तैल मञ्जरी (कड़वा)

२१५-२१८. जायफल, लौंग, त्रिकुटा, कुठ (कड़वा) त्रिफला, नीम का पंचांग, इलायची तजपत्र=तेजपात मुस्ता=नागरमोथा पिप्पलामूल चित्रक गिरिकर्णिका=अपराजिता, दशमूल कुबेराक्षी=(कंरजवा), जीरा काक्याथ=घनसत्वां सैंधानमक, ब्रह्मबीज=पलाश ? शाल्मली=सेमल, ब्रह्मकन्द=मूसली ? ब्राह्मी, बच, करा=पाठा=पाढ़, रोहिणी=रोकौड़ ? ब्रह्मदण्डी, त्रिवासा=काला, पीला, सफेद बासा पत्र, पोहकर मूल,

त्रिवासा पुष्करं बिल्ववरुणा चाजमोदकम्।
वर्वरीबीजसाभानुकरज च समूलकम्॥ २१८॥
लशुनं वदरीमूलं कुमारी रजनी तथा।
भृंगराजमपामार्गं सिद्धिमूलं च किंशुकम्॥ २१९॥
अंकोलराजवृक्षै च नटीसामीरसं तथा।
दारुनिशा च मंजिष्ठा अक्षरोध्रुशतावरी॥ २२०॥
एतत्सर्वं समासेन शुष्क चूर्णं तु कारयेत्।
वस्त्रपूतं ततः कृत्वा चूर्णं तैले विनिःक्षिपेत्॥ २२१॥
पाकं कुर्यादहोरात्रं ततः पश्चात्समुद्धरेत्।
प्रयोगम च ततः कुर्याज्ज्ञानज्योतिरुदाहृतः॥ २२२॥
सन्निपातंयाकक्षयं कुष्ठगुल्मौ भ्रमिकामुत्पित।
व्यथा गलग्रहं कर्णाक्षी सर्वांग च अजीर्णकम्॥ २२३॥
सन्निपातं पित्तवातं पंगुग्रन्थि च शूलकम्।
विशूची दद्रुकण्डूं च शोफकामलजूज्वरे॥ २२४॥
वृद्धं च गण्डमालां च ज्वाला वातस्य कंडूकार।
हन्यात्क्रमेण तदव्याधीन् स वाधाभ्यन्तर स्थितान्॥ २२५॥
पूर्वाचार्यैः कृतं तैलं कंजरी लोक हेतवे।
कृपया व्याधिनाशाय ज्ञानज्योतिरभाषत॥ २२६॥

बेलगिरी, वरुणा=वरना, अज्ञमोद, वर्वरी बीज=तिगंद वावरी (वनतुलसी नगदवाव) साभानु=आक, मूलसहित करज

२१९-२२२. लहसून, बेरी की जड़, गवारपाठा, रजनी=हल्दी ? भृंगराज, अपामार्ग सिद्धिमूल=भाग की जड़, किंशुक=ढाक, अकोल रजवृक्ष=अमलतास ? नटी=सामीरस=दारु=रसोत, निशा=हल्दी, मजीठ, अक्षरोधु=तैल में एक दिन एक रात लगातार पकाकर सिद्ध करले और विचार कर रख लें और प्रयोग करे।

२२३-२२६. तैल के लगाने से इस सन्निपात, वातजन्य क्षयरोग, लंगड़ापन, गांठ, शूल, हैजा, दाद, खाज, शोथ=सूजन कामला, ज्वर बढ़ी हुई कण्ठमाला, दाह, सूखी खुजली, आदि बाहर-भीतर के सभी समूल नष्ट हो जाते हैं। लोगों के हित के लिए प्राचीन आचार्यों ने इस तैल मंजरी का योग तैयार किया है, ऐसा ज्ञानज्योति आचार्य का कथन है। और भी

अन्यच्च—

नागकेशरकुंकुम च पद्मकेशरमल्लिका ।
जातीफलंलवगानि एलात्वकात्रमेलनम्॥ २२७॥
मुस्तावचात्रिकटुकं चन्दनं चित्रकं तथा ।
समभागं च संग्राह्य शुष्कचूर्ण च कारयेत्॥ २२८॥
एकविंशदिनं यावत ततः पश्चात् समुद्धरेत्।
शुभदिने शुभनक्षत्रे भक्षयेत्कर्षमात्रतः॥ २२९॥
मासमात्रप्रयोगेन मन्मथादेहदिव्यवान् ।
बलं वीर्यं तथा प्रज्ञां क्षुधायाश्च विवर्धनम्॥ २३०॥
रमते दिव्यभावेन प्रमदानां शतं तदा ।
हरते सर्वरोगाश्च मेधावी च विचक्षणः॥ २३१॥
दुग्धोदनेनयुतं पथ्यं प्रयत्नेन जितेन्द्रियः।
कामप्रकाशनामोऽयमुक्तो ज्ञानयतीश्वरैः॥ २३२॥
कुटजस्य पलान्यष्टौ बीजानि च समुद्धरेत्।
चूर्णं च यत्नतः कृत्वा सितापलचतुष्टयम्॥ २३३॥

---

२२७. नागकेसर, केसर, कमलकेसर, जायफल, लौंग इलायची, तजपत्र=तेजपात

२२८-२३२. मुस्ता=मोथा ? वच, त्रिकुटा, चन्दन, चित्रक इनको समभाग लेकर चूर्ण बना लें, इस चूर्ण को २१ दिन तक.........(के रस में भिगोकर रख दें) तदनन्तर निकालकर ६-६ माशा सेवन करें। एक मास तक निरन्तर प्रयोग करने से शरीर कामदेव की भांति दिव्य और सुन्दर हो जाता है। बल, वीर्य तथा प्रज्ञा बढ़ती है तथा भूख भी लगने लगती है। इसके सेवन से ऐसी दिव्य शक्ति प्राप्त होती है कि सौ स्त्रियों से भी रमण किया जा सकता है। सभी रोग नष्ट होकर व्यक्ति मेधावी और विचक्षण हो जाता है। औषध सेवन के समय दूध और चावल का सेवन करें और जितेन्द्रिय रहें। ज्ञानज्योति यतीश्वर ने इस योग को कामप्रकाश नाम से अभिहित किया है।

२३३-२३४. कुटज के बीज=इन्द्रजौ आठ पल (८८ माशे=साढ़े सात तोले) लेकर चूर्ण कर लें। उस चूर्ण में मिश्री चार पल=(४४

मध्ये निक्षिप्यकर्त्तव्या पञ्चाशद् गुटिका बुधैः।
ब्राह्मीरसं समाहृत्य कुमारी रसमाहरेत्।
गोमूत्रेणसमं कुर्याद्देक्वभाण्डे विनिक्षिपेत्॥ २३५॥
चत्वरः प्रहरं यावत् कल्कनीयं विचक्षणः।
एतत् सर्वं शोषयित्वा ततः पश्चात्समुद्धरेत्॥ २३६॥
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञो नित्यं बलविवर्धनम्।
मन्दाग्न्यबलसंघात कालश्वास विनाशनम्॥ २३७॥
क्रमेण हरते व्याधीन् नान्यथा मुनिरब्रवीत्।
अपक्वरजनीग्रह्य गोतक्रेण समं पिबेत्॥ २३८॥
मासमात्रप्रयोगेण कृशांगोऽपिमहान्भवेत्।
कर्षचित्रमूलस्य गोमूत्रेण समंपिबेत्॥ २३९॥
तक्रेण हरते व्याधीन् षण्मासात्पलितं हरेत्।
स्वातिकश्च स्वरूपश्च सौभाग्योजायते नृपः॥ २४०॥
निर्वाते नियमस्थायी तैलाम्लादिविवर्जितः।

माशे=तीन बटा चार) मिलाकर जल के योग से ५० गोलियां बना लें। प्रतिदिन १-१ गोली का सेवन करने से..........

२३५-२३७. ब्राह्मीरस, कुमारी=गवारपाठा रस और गोमूत्र समभाग लेकर एक पात्र में डाल दें, पुनः चार प्रहर=१२ घण्टे तक अग्नि पर तपायें, जब सब सूख जाये तो उस चूर्ण को एकत्र करके गोली बना लें। प्रतिदिन १-१ गोली खाने से बल वृद्धि होती है, मन्दाग्नि, कमजोरी, खासी और श्वास रोग ठीक होते हैं।

२३८. कच्ची हल्दी को गाय के तक (अधबिलोये दही) के साथ एक मास तक सेवन करने से दुर्बल व्यक्ति भी स्थूल हो जाता है।

२३९-२४०. छः माशे चित्रमूल चूर्ण को गोमूत्र या तक के साथ छः मास तक सेवन करने से शरीर नीरोग होकर सफेद बाल भी काले हो जाते हैं। औषध सेवन करते समय निर्वात स्थान में रहे, नियम से रहे तथा तैल और खटाई का सेवन नहीं करना चाहिये।

अथ ज्वरांकुशः

रसगन्धकजयपालं कटुकीमर्द्दयेत्सुधीः॥ २४१ ॥
भृंगराजरसेनैव यावत्कज्जलतां व्रजेत् ।
कुबेराक्षीप्रमाणेन गुटिकां कारयेद् बुधः॥ २४२ ॥
ज्वरांकुशोमलान् हन्ति ज्वरांकुशरसः क्षणात्।
रसामृतं च तालं च गन्धकं कटुकत्रयम्॥ २४३ ॥
जयपालं भृंगराज रसैः सम्यक् विमर्दयेत्।
वटकं चणकाकारं सर्वरोगापहारकम्॥ २४४ ॥
वातक्षयाश्मरीकुष्ठमलसौक्षविधापयेत्।
आचरन्ति तु ये मर्त्यस्तेषां बलविवर्धनम्॥ २४५ ॥
प्रतापभैरवो नामा रसराज उदाहृतः।
रसभस्मलौहचूर्णं च अभ्रकं च तथैव च॥ २४६ ॥
नागवल्लीदले कृत्वा शृंगवेररसेन वा।
दातव्यं भिषक्यत्नेन कफश्वासारुचिं जमेत्॥ २४७॥
मन्दाग्निपाण्डुरोगं च गुल्मशूलशिरो व्यथा।
अपस्मारं तथा हन्ति मेहोदरमतः परम्॥ २४८ ॥

ज्वरांकुश

२४१-२४२. शुद्धरस (पारा) शुद्ध गन्धक, जयपाल (शुद्ध जमालगोटा), कटुकी इन सबको भृंगराज के रस में तब तक मर्दन करे जब तक कि कज्जली न बन जाये। पुनः कुबेराक्षी=बेर या करंज के बीज के समान गोली बना लें, यह ज्वरांकुश नामक रस शरीर के सभी मलों को दूर करके ज्वर तुरन्त लाभ करता है।

२४३-२४५. रसामृत=पारा, हरताल शुद्ध गन्धक, त्रिकुटा और शुद्ध जमालगोटा समभाग लेकर भांगरे के रस में भली भांति मर्दन करे और चणे के समान गोलियां बना लें। इसके सेवन से वातजन्य क्षयरोग पथरी, कुष्ठ.....आदि रोग ठीक हो जाते हैं। जो लोग इसका सेवन करते हैं, उनमें बल बढ़ जाता है।

२४६-२४८. प्रताप भैरव में पारदभस्म, लौहभस्म और अभ्रकभस्म मिलाकर पान के पत्ते में अथवा अदरक के रस के साथ देने से कफ, श्वास, अरुचि, मन्दाग्नि, पीलिया, गुल्म शूल, शिरदर्द, अपस्मार=मृगी और जलोदर में अत्यन्त लाभकारी है।

अभ्रकं मधुसंयुक्तं पंचगुल्मानि हन्ति हि।
लौहमण्डूरमध्वाज्यं शोथकामलनाशनम्॥ २४९॥
रससिन्दूरमध्वाज्यं सर्वरोगानि कृन्तति।
अभ्रकं लौहचूर्णं च पाण्डगुल्मादिकं रहेत्॥ २५०॥
त्रिसुन्दरं समकृत्वा मध्वाज्येन च भक्षयेत्।
हरते सर्वरोगांश्च नान्यथा मुनिरब्रवीत्॥ २५१॥
अभ्रकं वंगचूर्णेन तुष्टिपुष्टि विवर्धनम्।
अभ्रकं ताम्रचूर्णेन सर्वव्याधीन् व्यपोहति॥ २५२॥
अभ्रकं त्रिकटुसंयुक्तं कंडूपाण्डुविनाशनम्।
अभ्रकं त्रिफलायुक्तं शूलमन्दाग्निनाशनम्॥ २५३॥
त्रिवासापीतवासा चासासया महाभ्रंतु ।
वातगुल्मप्रशाम्यति ॥ २५४॥
अभ्रकं गाव्यदुग्धेन पित्तदोषं प्रशाम्यति।
अभ्रसूतं निम्बरससंयुक्तं शूलं विनाशयेत्॥ २५५॥

२४९-२५०. अभ्रक भस्म यदि मधु से सेवन की जाये तो पांचो प्रकार के गुल्मरोज नष्ट हो जाते हैं। लौहभस्म और मण्डूरभस्म को घी और मधु के साथ सेवन करने से शोध=सूजन और कामला रोग ठीक हो जाता है। रस सिन्दूर को मधु और घी के साथ के साथ लेने से सभी रोग ठीक होते हैं। अभ्रक और लौह भस्म मिलाकर लेने से पाण्डु और गुल्मरोग नष्ट हो जाते हैं।

२५१. त्रिसुन्दर=सारभस्म, अभ्रकमस्य (भोडल) और पारदमस्य समभाग लेकर मधुर और घी के साथ खाने से सभी रोग नष्ट होते हैं।

२५२-२५३. अभ्रक भस्म बंग भस्म के साथ खाने से पुष्टिदायक होती है। ताम्रभस्म के साथ खाने से सभी व्याधियाँ दूर होती हैं। त्रिकुटा के साथ सेवन करने से खुजली और पाण्डु रोग नष्ट होते हैं। त्रिफला के साथ खाने से शूल और मन्दाग्नि में लाभ होता है।

२५४. त्रिवासा=पीला बासा.........................

२५५-२५६. अभ्रकभस्म गोदुग्ध से सेवन करने से पित्त दोषों को शान्त करता है। अभ्रकभस्म और पारदभस्म को नीम के रस से लेने पर थूल रोग में लाभ होता है। सूत=पाराभस्म का सेवन भांगरे के

भृंगराजरसैर्भस्म सूतं ज्वरविनाशनम्।
त्रिफलालौहचूर्ण च शूलं चैव निवर्जयेत्॥ २५६॥
एकद्वित्रिप्रभागेन भस्मसिन्दूरयोगतः ।
क्षतक्षयमहावात सन्निपातविशूचिकाम्॥ २५७॥
पाण्डुज्वरं च मन्दाग्निं गुल्मवाताश्च शूलजित्।
कर्णा क्षिनासिकाकण्ठगुदेन्द्रिय ग्रहान्यपि॥ २५८॥

दद्रुहरः

लकुचरसं यवक्षारं वृषणंशूलनाशयेत्।
त्रिक्षारं लकुचरसं पंचगुल्मानि शोधर्यत्॥ २५९॥
तवक्षीर मुद्गपर्णीनेत्रपुष्पं विनाशयेत्।
अपराजिताया बीजं पुष्पं निकृति त तथा॥ २६०॥
कुष्माण्डीरसलेपेन लौहजालं विनश्यति।
शतायोराप्रणाशस्य कुमारी वाग्निलेपनात्॥ २६१॥

रस से करने पर ज्वर नष्ट होता है। त्रिफला और लौहभस्म थूल रोग में लाभकारी है।

२५७-२५८. एक, दो, तीन प्रमाण से सूत=पारा और सिन्दूर=रस सिन्दूर, बढ़ा हुआ क्षय रोग, महावातरोग, सन्निपात, हैजा, पाण्डुजन्य ज्वर, मन्दाग्नि, गुल्य=वायुगोला, शूलरोग, कान, आँख, नाक, कण्ठ और गुदा के रोग ठीक हो जाते हैं।

दाद नाशक योग

२५९. लकुचरस=कुचला और यवक्षार के सेवन से अण्डकोस का शूल रोग ठीक होता है। इन दोनों को दाद पर लगाने से दाद ठीक हो जाते हैं। त्रिक्षार=मूलीक्षा, टंक=सुहागा=सज्जीक्षार और भवक्षार को कुचला के साथ सेवन करने से पांच प्रकार के उदर शूल=गुल्म नष्ट होते हैं।

२६०. तवक्षीर=तीखुर और मुद्गपर्णी नेत्र फोले को नष्ट करते हैं। अपराजिता=कोयल=के बीज आँख के फोले को नष्ट करते हैं।

२६१. कुष्मांडी=पेठे के रस का उदर पर लेप करने से लौहजाल= जलोदर रोग नष्ट हो जाता है।

लोमजातं भवेत्तत्र न वातो दिव्यऔषधम्।
अंऽचासम्भवेद्यस्य हिसारीमूललेपनात्॥ २६२॥
अन्यच्चा भस्मसूतेन जलोदर विनाशनम्।
ईश्वरी त्रिसुन्दरेण जलोदर निकृन्तनम्॥ २६३॥
त्रिलोहस्य समं चूर्णं मध्वाज्येन चपेषयेत्।
विषंसूतं समं कृत्वा मर्दयेत् कनकद्रवैः॥ २६४॥
निर्वाते सेवयेन्नित्यं गुञ्जामात्रप्रयत्नतः।
लौहसिन्दूरमाम्ना वै रसो ख्यातो यतीश्वरैः॥ २६५॥
वटुलौहसमभागेन चूर्णीकृत्य विचक्षणैः।
पुटैर्निम्बरनैर्दधातु त्रिफलाया पुनर्जना॥ २६६॥
गुंजाइयं त्रयं वापि वटकानि गदाश्रयान्।
हरते सर्वरोगाश्च रसोऽयं विष्णुपञ्जरः॥ २६७॥
धान्याभ्रंपलमेकं तुसारकर्षसमन्वितम् ।
वटक्षीरेण सम्मर्घ कज्जलं कारवेत्सुधीः॥ २६८॥

२६२.

२६३. सूतभस्म के सेवन से भी जलोदर रोग नष्ट हो जाता है। ईश्वरी (शतावर) और त्रिसिन्दूर=लौहभस्म, अभ्रकभस्म और रस=पारे के यथायोग्य सेवन से भी जलोदर ठीक हो जाता है।

२६४-२६५. त्रिलौह=लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म? समभाग लेकर मधु और गोघृत के साथ मर्दन करे। इस प्रकार औषध तैयार होने पर निर्वात स्थान में जाकर एक गुंजा (१ रत्ती) की मात्रा सेवन करनी चाहिये। यह लौहसिन्दूर नाम से प्रसिद्ध है।

[विष्णुपञ्जर]

२६६-२६७. षड् लौह चूर्ण समभाग लेकर नीम के रस में भावना देकर अग्नि में पुट देने से इसी प्रकार त्रिफला और पुनर्नवा (इटसि) सफेद सांठी के रस की भावना देकर अग्नि में पुट देवें। इस औषध को रोग के अनुसार २ वा ३ गुंजा (रती) की मात्रा देने से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। यह विष्णुपञ्चर नामक रस है।

२६८-२६९. धान्याभ्र एक पल (४४ माशे) सारभस्म एक कर्क्ष (६ माशा) को बड के दूध में रगड़ कर कज्जली बना लें। इसे मिश्री

सितालवंगयुक्तं तु जातीफलकटुत्रयम् ।
गुंजाद्वादशमात्रेण भक्षणदूरोगनाशनम्॥ २६९ ॥
सर्वव्याधिहरो नाम किल्विषं नाशयेत्ततः।
पारदं गन्धकं चैव नागवल्लीरसद्रवैः॥ २७० ॥
वारं वारं पुटं देयमेकविंशतिसंख्यया।
प्रथमतुलसीद्रावैः कनकस्य तूतः परम्॥ २७१ ॥
मर्दयित्वाप्रयत्नेन शुष्कचूर्णं च कारयेत्।
आलोऽयनवनीतेन काचकूज्यां विनिः क्षिपेत्॥ १७२ ॥
घृतशोषणमात्रेण कारीषाग्निं नियोजयेत्।
ततः पश्चात्समुद्धृत्य रक्षयेच्च प्रयत्नतः॥ २७३ ॥
माषद्वयं तुतो भक्ष्यं कामोद्रेको भवेन्नृणाम्।
मदनकामदेवस्तु रसो मदकरः स्मृतः॥ २७४ ॥
दुग्धोदनं च भोक्तव्यं सौभाग्यारोगहेतवे।

चन्द्रोदयरसः

प्रमेहविशतिर्युत्का मेहानां च बलोरसः॥ २७५ ॥

लौंग, जायफल और त्रिकुटा के साथ १२ गुंजा (रती) की मात्रा खाने से सब रोगों का नाश होता है।

२६९-२७२. शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक को नागरबेल के रस में २१ भावनायें दें। पुनः तुलसी के रस में तथा पश्चात् धतूरे के रस में मर्दन करके सुखाकर चूर्ण बना लें। इसमें मक्खन मिलाकर कांच के पात्र में भर दे।

२७३-२७४. घी सूखने तक करीष=आरणों=जंगल में पड़े सूखे गोबर (कंडो) की अग्नि पर तपावे। पुनः उतारकर सुरक्षित रख ले। इस औषध को दो मास तक सेवन करने से कामोद्रेक हो जाता है। यह कामदेवरस अत्यन्त मदनवर्द्धक है। इसके सेवन काल में दूध और चावल खाने चाहियें, इससे सौभाग्य और आरोग्य बढ़ता है।

चन्द्रोदय रस

२७५-२७६. यह चन्द्रोदय रस बीस प्रकार के प्रमेहरोग तथा अन्य मूत्र रोगों पर लाभकारी है। त्रिसिन्दूर=सारभस्म (=सुहागा?) अभ्रक (भोडल) भस्म, रस=पारदभस्म समभाग लेकर सत्स्याक्षी=

त्रिसिन्दूरसमकृत्वा मत्स्याक्षीरसयोगतः।
सर्पाक्षीरसभावेन प्रमेहान् विंशतीन हरेत्॥ २७६॥
गन्धकं लौहचूर्णं च रसं वामृतताम्रकम्।
एलात्वक्यत्र कटुका त्रितयं त्रिफलायुतम्॥ २७७॥
रेणुकं चित्रमूलं च विडग च लवगकम्।
नागकेशरमार्गीच समभागं च चूर्णयेत्॥ २७८॥
वस्त्रपूतं ततः कृत्वा गुरुद्रोणे तुमर्दयेत्।
वटक चणकाकारं षडुत्तरशतत्रयम्॥ २७९॥
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञो भोजनं च यथासुखम्।
गण्डमालां च पलितं हन्ति चानिप्रदीपकम्॥ २८०॥
कुष्ठमष्टादशं हन्यात् धान्यवातं महाक्षयात्।
नाश्यति वाजतान् रोगान् अरुचि मूत्रकृच्छकम्॥ २८१॥
सन्निपातं महावातं पञ्चगुल्मानि हन्ति वै।
प्रमेहं विशतिं हन्ति भगन्दरमतः परम॥ २८२॥
कासश्वासश्च मन्दाग्निं पाण्डुरोगमथापि वा।
अन्त्रवृद्धि गलग्राहं विशूची विषमज्वरम्॥ २८३॥

ब्राह्मी के रस की भावना दें। पुनः सर्प्पाक्षी=गांजा के रस की भावना दें। यह औषध बीस प्रकार के प्रमेहों को ठीक करता है।

भुक्तिवल्ली रस

२७७-२८०. शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, इलायची, तेजपात, त्रिकुटा, त्रिफला, रेणुक=पित्तपापड़ा, चित्रमूल, वायविडंग, लौंग, नागकेशर मार्गी, ये समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण कर लें और गुरुद्रोण=द्रोणपुष्पी (गुम्मा) के साथ मर्दन करे। पुनः चने के समान ३०६ गोलियाँ बना लें और १-१ गोली प्रतिदिन सेवन करे और सुख से भोजन करें।

२८०-२८२. इसके सेवन से कण्ठमाला और पलित=श्वेत केश रोग ठीक होता है। अग्नि प्रदीपक है। अठारह प्रकार के कुष्ठ, धनुर्वात, महाक्षयरोग, वातजरोग, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, सन्निपात, महावात, पांच प्रकार के गुल्म बीस प्रकार के प्रमेह रोग भगन्दर

२८३-२८७. कास, श्वास, मन्दाग्नि, पाण्डु=पीलिया, आन्त्रवृद्धि,

शूलं कर्णाक्षीविस्फोटं वायुमिन्द्रशरादिकम्।
प्लीहं च तोहजालं च गलगण्डे चांगुलीव्यथा॥ २८४॥
तथापस्मारमुच्यादवन्ध्यत्वद्वरनाशनम् ।
पीनसं योनिभगं च गुदभंगं तथैव च॥ २८५॥
अण्डवृद्धिमहावातं सौभाग्यं सर्वसौख्यदम्।
हन्त्यानां बहुरोगाश्च ज्ञानज्योतिप्रसादतः॥ २८६॥
संशयो च कर्त्तव्यः पल्ववचोत्तरायणम्।
भुक्तिवल्लीरसोनाम मोदते स चराचरम्॥ २८७॥
त्रिफलाभिकटुयुक्तं पारदामृतगन्धकम्।
टंकणं च हरीतालं त्रिक्षारं चित्रकं तथा॥ २८८॥
मुस्तैलात्वच् भारंगी पिप्पलीचित्रकं तथा।
अश्वगन्धा विडंगानि जातीफललवंगकम्॥ २८९॥
कर्चूरं रजनीभानुतालं कनकबीजकम्।
लौहचूर्णं ततः पश्चात्कुमारी शंखपुष्पिका॥ २९०॥
नागवंगसमाचूर्णं वस्त्रपूतं च कारयेत्।
पूर्वोचार्योक्तभार्गेण ज्ञानज्योतिरभाषत॥ २९१॥
चतुषष्टिमितान् व्याधीन हन्ति सर्वाण्यनेकधा।
लंकेश्वर इतिख्यातो नाम्नापर सईदृशः॥ २९२॥

गलग्राह, विशूची=हैजा, विषमज्वर, शूल, कान और आख के फोड़े, इन्द्रशर आदि वायुरोग प्लीहा, लौहजाल=जलोदर, गलगण्ड= कण्ठमाला, अंगुली व्यथा=विषकण्टा, अपस्मार, वन्ध्यत्व पीनस= नजला, योनिभंग=योनिरोग गुदभंग=गुदारोग, अण्डवृद्धि, महावात= वायुरोग इत्यादि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। भुक्तिवल्लीरस का सेवन करनेवाला सदा प्रसन्न रहता है।

लंकेश्वर रस

२८८–२९२. त्रिफला त्रिकुटा, पारद, अमृत=गिलोय, गन्धक, सुहागा हरताल, त्रिक्षार=(मूलीक्षार, सुहागा, यवक्षार), चित्रक, मुस्त= मोथा एलात्वक्=दालचीनी, भारंगी, पिप्पली, अश्वगन्धा, वायविडंग, जायफल, लौंग, कपूर, हल्दी, भानुताल=तालमखाना, धतुरे के बीज, लौहभस्म, गवारपाठा, शेखपुष्पी, नागभस्म, वंगभस्म ये समभाग से

अथ राजवाष्यर चूर्णम्

फटकीलवणं चैव गन्धकं क्षीरकत्रयम्।
टंकण नवसारं च हिंगुल नील पुष्पकम्॥ २९३॥
कटुत्रयं च त्रिफला वावचीवचवासूकम्।
लवंगं लशुनं कोष्टं समचूर्णानि कारयेत्॥ २९४॥
नित्यं गुञ्जाइयं भक्ष्यं सर्वरोगापहारकम्।
राजवाष्यरचूर्णेन मोदते स चराचरम्॥ २९५॥
एलात्वक्पत्रमुस्ताख्यं भारंगीग्रन्थसैन्धवम्।
काश्मीरीमजमोदं च टंकणं ताम्रचूर्णकम्॥ २९६॥
जातीफलं लवगानि विडंगधेनुक तथा।
नागकेशरचूर्णं च हमवीजानि दापयेतु॥ २९७॥
कर्पूरं पिप्पलीमूलं जयपालं च सुगन्धिकम्ष।
एथानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ २९८॥
गुडेन मर्द्दयेद्धीमान् गुटिकाचमकाकृतिः।
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञः तैलाम्लक्षारवर्जितः॥ २९९॥

लेकर कूट कपड़ चूर्ण कर लें। यह औषध ६४ प्रकार के रोगों को नष्ट करता है।

राजवाष्यर चूर्ण

२९३-२९५. फटकी=फिटकरी भस्म? लवण, शुद्धगन्धक, क्षीरकत्रय=सुहागा, नौशादर, हिंगुल नीलपुष्पक=अपराजिता, नीलकमल त्रिफला, बावची बांसा, लौंग, लहसुन कोष्ट=कूठ इनको समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। प्रतिदिन दो रती चूर्ण का सेवन करने से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

मदन भैरव

२९६-२९८. इलायची, तेजपात, कपूर भारंगी, ग्रन्थ=सैंधानमक, काश्मीरी=केसर? कश्मीरी अजमोद? सुहागा, ताम्रभस्म, जायफल, लौंग, बाय बिडंग, धेनुक=धनिया? नागकेशर, हमबीज=कपूर, पिपलामूल, शुद्ध जमालघोटा, सुगन्धिक=रतनजोत? ये समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। गुड़ के साथ रगड़कर चने बराबर गोलियां बना लें।

२९९-३०१. प्रातः सायं १-१ गोली का सेवन करे। तैल, खटाई,

मासेन हरते व्याधीन् द्वितीये बलवर्धनम्।
तृतीये शुक्रवृद्धिः स्याच्चतुर्पे पुष्टिवर्धनम्॥ ३००॥
पंचमेहन्यते कुष्ठं षष्ठेऽपस्मारकं हरेत्।
उन्मादं सप्तमे हन्यान्महावातं तथाष्टमे॥ ३०१॥
कुष्ठव्याधीन् च नवमे दशमे वधिरात्मकम्।
एकादशे क्षयान् सप्त द्वादशेऽसिकल्यकाम्॥ ३०२॥
हरते सर्वरोगांस्तु नर्णिांमासक्रमादयम्।
रसो कामकरो यस्मान्नाम्ना मदन भैरवः॥ ३०३॥
तन्मयो मनस्यध्यायं वालावच्च जितेन्द्रियः।
नित्यं च सेवयेद्यस्तु तस्य सिद्धिः प्रजायते॥ ३०४॥
कृपया सर्वलोकानां ज्ञानज्योतिरुदाहृतः।

अथ चतुराननो रसः

चूर्णं नागस्य वंगस्य ग्राह्यं तच्छुल्वलोहयोः॥ ३०५॥

नमक आदि न खायें। एक मास में सब रोगों को दूर करके दूसरे मास में शक्ति प्राप्त हो जाती है। तीसरे मास में वीर्य वृद्धि होकर चौथे मास में पुष्ट हो जाता है। पाचवें महीने में कुछ तथा छठे में अपस्मार, सातवें में उन्माद पागलपन और आठवें महीने में वायु के सभी रोग ठीक हो जाते हैं।

३०२-३०४. नवम मास में कुष्ठादि रक्त विकार, दशम मास में बहरापन, ग्यारहवे महीने में सात प्रकार के तपेदिक रोग, तथा बारहवें मास में मासक्रम से अर्थात् चैत्र से फाल्गुन तक जिस-जिस मास में जिस-जिस रोग के लिये सेवन करना बताया है, उसी मास में सेवन करने से वही रोग नष्ट हो जाता है। यह रस काम को प्रदीप्त करनेवाला है, इसलिये यह मदमभैरव नाम से भी जाना जाता है। इसके सेवन समय परमेश्वर का ध्यान करके बालकों की भांति जितेन्द्रिय विकार-रहित होना चाहिये। इसका नित्य सेवन करने से सिद्धि हो जाती है। सब लोगों के भले के लिये आचार्य ज्ञान ज्योति ने यह योग लिखा है।

चतुरानन रस

३०५-३०९. नागभस्म, वंगभस्म, ताम्रभस्म और लौहभस्म बराबर-बराबर लेकर नागरबेल पान के रस में, धतूरे के रस में तथा कांजिक तथा वतुलपत्र में २१ भावनायें देकर धूप में सुखा लें। पुनः

एतानि समभागानि नागवल्लीदलद्रवैः।
धातूरस्यतोयेन कांजिकेनतप्यातपे ॥ ३०६॥
तथा वतुलपत्रैश्चपुटं दद्यात्त्रिसप्तकम् ।
निशा वचा सैन्धवं च राठनीमूलं च भैषजम्॥ ३०७॥
कर्चूरंच लवंगानि त्वगेलापत्रभद्रकम् ।
गन्धकं शुद्धसूतं च समभागेन योजयेत्॥ ३०८॥
तामालमभयाद्रावैः भारगाशोत्रिमूलकम् ।
माषस्य च प्रमामेन कुर्याद् वैवटकानि च॥ ३०९॥
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञः सर्वव्याधिविनाशनम्।
चतुराननसंज्ञो वै रसः ख्यातो यतीश्वरैः॥ ३१०॥

इति चतुराननरसः

अथ प्रौढमदनरसः

जातिमूलं लवगानि चित्रमूलं तथैव च।
सूतगन्धे समंदधात् पुटानिस्युर्यथापुरा॥ ३११॥
धर्तूरतुलसीद्रावैर्नागवल्लीरसैस्तथा ।
आतपे शोषयित्वा तु सूक्ष्मं चूर्णं तुकारयेत॥ ३१२॥
काचकूप्यां चनि क्षिप्य नवनीतं विनिक्षिपेत्।
निर्धूमाग्नौ स्थाव्य पात्रं यावच्छुध्यति-औषधम्॥ ३१३॥
प्रत्यह माषमात्रं तु भक्षणात्सर्वरोगहा।
प्रौढोमदनसंज्ञस्तु रससेवीपयोऽन्नभुक्॥ ३१४॥
शतसंख्या युवतीभिः क्रीडते स च मानुषः।

इति प्रौढमदनरसः

उसमें निशा=हल्दी, वच, सैन्धा नमक, राठनीमूल=कपूर, लौंग, इलायची, तेजपात, नीम के पत्ते? शुद्ध गन्धक शुद्ध पारा इनका समभाग चूर्ण मिला लें। पुनः तामाल=हरड़ के रस, भारंगी के रस तथा चित्रमूल के रस में मर्दन करके १-१ माशे की गोलियां बना लें।

३१०. इस रस की १-१ गोली प्रातः सायं खाने से सभी व्याधियाँ नष्ट हो जाती है। यह चतुरानन नामक रस है।

प्रौढमदन रस

३११-३१४. चन्द्र=नाकुली (रास्नाभेद) सूत=पारा गन्धक, हरताल, विष=शुद्ध वत्सनाभ से युक्त सभी औषध समभाग लें।

अथ चन्द्रोदयरसः

चन्द्रसूतं गन्धकं च तालकं विषसंयुतम्॥ ३१५॥
भागार्द्धे टंकणदद्याज्जयपालं तथैव च ।
कटुत्रयं तर्द्ध च त्रिफला चित्रमूलकम्॥ ३१६॥
मर्द्दयेत्समभागेन गोमूत्रेणैव रोगवित् ।
कुष्ठदाहद्दूरेद् व्याधीन् प्रमेहाश्च क्षयं तथा॥ ३१७॥
गुल्मशूलमहाजीर्णभ्रामकं कण्ठ शूलकम्।
ज्वरं च सन्निपातं च विशूचीविषमज्वरम्॥ ३१८॥
ज्ञानज्योतिभिरुक्तोऽसौ रसचन्द्रोदयाभिधः।

अथ सप्तपित्तहरः

कट्वम्लाचुकमानीय मुखं कुर्यात्प्रयत्नतः॥ ३१९॥
बीजानि च निराकृत्य मध्वाज्येन च पूरयेत्।
निधापयेद्धान्यराशौ मासमात्रेण-उद्धरेत्॥ ३२०॥
अंगुल्या रेहनीयं तु मासमेकं निरन्तरम्।
हन्ति तद् वातादि सप्त पित्त महाक्षयात्॥ ३२१॥
ज्ञानज्योतिकृतं शास्त्रं सुपथ्यं विधिना मतम्।
विदारीकन्दंसितया सर्वपित्तानि नाशयेत्॥ ३२२॥

३१६-३१९. सुहागाखील जयपाल=(शुद्ध) जमालघोटा, त्रिकुटा=सोठ, कालीमिर्च, पीपल आधा भाग, त्रिफला, (हरड़, बहेड़ा, आंवला) और चित्रमूल ये सब समान भाग लेकर गोमूत्र में मर्दन करे। सूक्ष्म पूर्ण होने पर सुखा लें और रोगानुसार मात्रा दे। इससे कुष्ठ, दाह (जलन) प्रमेह, क्षय, गुल्म, शूल, भयंकर अजीर्ण, भ्रमरोग, कण्ठशूल, ज्वर, सन्निपात, विशूची (हैजा) और विषमज्वर नष्ट हो जाते हैं। आचार्य ज्ञानज्योति चन्द्रोदय नामक रस कहा है।

सप्त पित्तहर

३१९-३२२. कड़वा और खट्टा आचुक्र=जायफल लेकर उसमें प्रयत्नपूर्वक छिद्र करके उसके बीज निकाल दे और उस छिद्र में मधु और घी भरकर अन्न के ढेर में एक मास तक दबा दे। एक मास पश्चात् निकालकर अंगुलीमात्र दवा लेकर चाटें। एक मास तक सेवन करने से वातरोग, सात प्रकार के पित्त तथा भयंकर तपेदिक भी

भुक्तपाकरसः

काचकूप्यां रसं क्षिप्त्वा लेपयेद्वस्त्रमृण्मयम्।
चित्रमूलं समानीय यदि वा पर्णानि पेषयेत्॥ ३२३॥
संजोज्य यत्नतः क्षिप्त्वा तन्मध्ये मेलयेद्रसम्।
निर्धूमे वह्नि तर्प्यमर्धोर्द्दत च समुद्रयात्॥ ३२४॥
स्थाप्य यामद्वयं पश्चात् प्रयत्नेन समुद्धरेत्।
जातीफलं त्रिकटुकं एलामुस्त विशेषतः॥ ३२५॥
हरते सर्वरोगाश्च भुक्तपाको महारसः।
ज्ञानज्योतिस्तु कृपया कौतुकार्थमभाषत॥ ३२६॥
रसकर्षद्वयं प्रोक्तं तत्प्रमाणेन गन्धकम्।
टंकणं चित्रकं मूलं हिंगुपूर्वप्रमाणतः॥ ३२७॥
कर्षार्द्धममृतं प्रोक्तं जयपाल तदर्धकम्।
तदर्द्धं कटुकीकर्ष त्रिफलाकटुकत्रयम्॥ ३२८॥
धेनुकं च विडंगानि कर्षकर्षं ततः स्मृतम्।
एथत्सर्वं समानीय सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ ३२९॥

नष्ट हो जाती है। औषध सेवन काल में पथ्य से रहे यह ज्ञान ज्योति आचार्य का योग है।

भुक्तपाक रस

३२३. सब प्रकार के पित्तों की शान्ति के लिये विदारीकन्द को मिश्री के साथ मिलाकर काच के पात्र में ....रस डालकर कपड़मिट्टी कर दे। चित्रमूल या चित्रपर्ण पीसकर

३२४-३२६. कपड़मिट्टी करने से पहले काचकूपी में डाल दें और धूयें रहित अग्नि में तपायें पुनः आधा ढक्कन खोलकर ६ घण्टे तक रखा रहने दे। शीतल होने पर निकालकर जायफल, त्रिकुटा, इलायची और कपूर मिलाकर रख ले। सब रोगों में लाभकारी यह भुक्तपाक रस कहलाता है।

३२७-३३१. शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, चित्रकमूल और शुद्ध हिंगुल २-२ भाग, आधाभाग अमृत=आधा भाग शुद्ध जमालघोटा, आधा भाग कटुकी, त्रिफला, त्रिकुटा, धनिया, बायबिडंग १-१ भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। मूंग के दाने के बराबर प्रतिदिन खाने से मन्दाग्नि, पीलिया, वायुरोग से उत्पन्न लंगड़ापन, हैजा आदि रोग नष्ट

रसोऽयं मुद्गमानेन भक्षयेन्नित्यमादरात्।
मन्दाग्निपाण्डुरोगं च पंगु वै वातवुद्धरम्॥ ३३०॥
विशूचीं सेवनाद् हन्ति पूर्वोक्तं पथ्यमाचरेत्।
अधोरान्तकसंज्ञो वै रसो ज्योतिरुदीरितः॥ ३३१॥
त्रिफला च त्रिकटुकं वत्सनागं च रेणुकम्।
रसगन्धकमाहृत्य ताम्रचूर्णं लवंगकम्॥ ३३२॥
कुष्ठजातीफलं पत्रमश्वगन्धाफलं तथा ।
बीजैव वाश्वगन्धाया बीज कनकसम्भवम्॥ ३३३॥
भृंगीबीजं च कर्पूरमजमोदं ततः परम् ।
मुस्ता च वानरीबीजं जीरकं च समभागकम्॥ ३३४॥
एतत्सर्वं समानेक्ष्य सूक्ष्मचूर्णं विधापयेत् ।
रसं प्रातस्समुत्थाय बुद्धिनात्रलये नरः॥ ३३५॥
पूर्वोक्तपथ्ययोगेन प्रमेहविंशति हरेत् ।
महाकष्टं त्रयोदोषश्चित्तशून्यं प्रशाम्यति॥ ३३६॥
कटिवातं च हृच्छूलं बधिरोन्मादनाशनम्।
ग्रन्थिशूलमपस्मारं वनवातमुरस्य च॥ ३३७॥
शिरः कम्पं त्रिभिश्लेष्मा कण्ठशोषादिरोगकान्।
कामानन्द रसो नाम्ना रहेद्रोगानशेषतः॥ ३३८॥

हो जाते हैं। यह अघोरान्तक नामकरस ज्ञान ज्योति ने कहा है।

३३२. त्रिफला, त्रिकुटा, वत्सनाग, रेणुक=सम्भालू, शुद्धपारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, लौंग—

३३३-३३८. कूठ, जायफल, जयफल के पत्ते, अश्वगन्ध के फल अथवा बीज, धतूरे के बीज, भृंगी के बीज, कपूर, अजमोद, वानरीबीज, जीरा ये सब समान भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। प्रात:काल उठकर खालीपेट इस चूर्ण का पथ्यसहित प्रयोग करने से २० प्रकार का प्रमेहरोग नष्ट हो जाता है। वात-पित्त-कफ की विषमता से उत्पन्न महाकष्ट चित्त की शून्यता, कटिपीड़ा, हृदयशूल, बहरापन, उन्माद, जोड़ों का दर्द, अपस्मार, छाती की पीड़ा, शिर:कम्प, तीनों प्रकार का श्लेष्मा, कण्ठ सूखना आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है। यह कामानन्द नामक रस है।

वाल्हीकमजमोदं च टंकणं लशुनं समम्।
गांगेरीरसतो मर्द्य वटकं पूगमात्रकम्॥ ३३९॥
एकैकं भक्षयेद्धीमान् मन्दाग्निं नाशयेत्क्रमात्।
गुप्तज्वरं तथा मन्दज्वरश्लेष्म विनाशनम्॥ ३४०॥
क्षुद्बोधश्च भवेत्तस्य दिव्यकान्तिश्च जायते।

अथाश्वगन्धादि चूर्णम्

अश्वगन्धाजगन्धा च धेनुकं च पुनर्नवा॥ ३४१॥
विष्णुक्रान्ता सहचरी सैन्धवं चाजमोदकम्।
एचच्चूर्णं समासेन नवभाण्डे विनिःक्षिपेत्॥ ३४२॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय विडालपदमात्रकम्।
कासश्वासं च मन्दाग्निमरुचिपाण्डुरोगकम्॥ ३४३॥
नित्यज्वरं मदयापूरंगपीडा प्रशाम्यति ।
भल्लातकं पलान्यष्टौ घृते तैलेन पाचयेत्॥ ३४४॥
एकैकं भक्षयेत्प्रात क्रमात्कुष्ठं व्यपोहति।
अजीर्णक्षयगुल्मादिं हरेद् दोषाननेकशः॥ ३४५॥
दुग्धोदनं च पथ्यंस्यान्नोचेद्रोगं प्रशाम्यति।
ब्राह्मीं समूलमानीय शुष्कचूर्णं तु कारयेत्॥ ३४६॥

३३९-३४०. वाह्लीक=खुरासानी अजवायन अजमोद, सुहागा, लहसुन ये समभाग लेकर गंगेरी=नाग बला के रस में मर्दन करे तथा सुपारी के बराबर गोलियां बना लें। एक-एक गोली का सेवन करने से मन्दाग्नि, अस्थिगतज्वर, मन्दज्वर और कफ का नाश कर देता है। भूख बहुत लगती है तथा मुख पर दिव्य कान्ति आ जाती है।

३४१-३४४. अश्वगन्धा, अजगन्धा, धनियां, पुनर्नवा (सांठी), विष्णुकान्ता (अपराजिता), सहचरी=पीलाबासा, सैंधा नमक, अजमोद ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बना लें तथा मिट्टी के नये बर्तन में रख लें। जितनी बिल्ली का पैर टिकता है, उतना चूर्ण प्रातःकाल खाली पेट खाने से श्वास कास मन्दाग्नि, अरुचि, पीलिया, सततज्वर, नशे से उत्पन्न अंगपीड़ा आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

३४४-३४६. भिलावा आठ भाग लेकर घी और तैल में पकायें। इसका यथोचित मात्रा में सेवन करने से कुष्ठ, अजीर्ण, क्षय=तपेदिक,

तुला प्रमाणं तच्चूर्णं घृतमिश्रंतु कारयेत्।
पाचयेद् यत्नतोधीमान् भोजनादौ च भक्षयेतु॥ ३४७॥
हरते सर्वरोगाश्च क्षुधा मेधाश्च वर्द्धनम्।
बलवीर्यमहाप्राज्ञः कण्डू विनाशनम्॥ ३४८॥
गुल्माजीर्णं महावातं मूत्रवृद्धि प्रशाम्यति।
ब्राह्मीघृतमितिरुयातः शम्भुना भाषितं॥ ३४९॥
वटस्यमूलं करवीरं तथा च रत्नमल्लिका।
नीत्वा सर्जुरसं चैव दुग्धेन सततपिबेत्॥ ३५०॥
आमशूलहरं प्रोक्तं ज्ञानज्योतिर्यतीश्वरम्।
अभयामजमोदं च व्योषसैन्धवपोषितम्॥ ३५१॥
उदकेन तु माषार्द्धं वटकं भक्षयेन्नरः।
ज्वरादिसर्वरोगाश्च हन्ति नात्र विचारणा॥ ३५२॥
क्रमेण भक्षणान्नर्णिां वयस्स्तम्भोऽपि जायते।

गुल्म (गोला=फोड़ा) आदि रोगों का शमन हो जाता है। औषध सेवन काल में दूध=चावल का सेवन करना चाहिये।

३४६-३४९. जड़ सहित ब्राह्मी को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बना लें। चूर्ण के बराबर ही उसमें गोघृत मिला लें। भोजन से पूर्व उचित मात्रा में सेवन करने से भूख और बुद्धि की वृद्धि होती है। बलवीर्य की वृद्धि होकर महाबुद्धिमान् हो जाता है। खुजली, पीलिया, गुल्म, अजीर्ण=अपच, महावात और मूत्रबाहुल्य आदि रोग शान्त हो जाते हैं। भगवान् शंकर ने इसे प्राचीन काल में ब्राह्मीघृत नाम से अभिहित किया था।

३५०. बड़ की जड़ करवीर=कनेर, रत्नमल्लिका=सर्जुरस=राल, समभाग लेकर चूर्ण बना लें और उचित मात्रानुसार औषध को दूध से निरन्तर सेवन करें। इसके सेवन से आम=कच्चा रस बनना और शूल रोग नष्ट हो जाते हैं।

३५१-३५२. हरड़, अजमोद से युक्त व्योष=सोंठ इनका समभाग चूर्ण करके पानी से आधे मासे की गोली का सेवन करने से ज्वरादि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। निरन्तर सेवन करने से आयुस्थापक का कार्य करता है अर्थात् शीघ्र बुढ़ापा नहीं आता।

अथ योनिवृद्धिः

गृजिन्यापि च निर्यासैः जलौकालागलीयुतम्॥ ३५३॥
पेषयेत्सुप्रयत्नेन महिषीनवनीततः ।
लेपनं च भगे कुर्यात्सेवयेत्तत्क्षणान्नरः॥ ३५४॥
रस एतत्स्वभावेन योनिवृद्धिः प्रजायते ।

अथ लिंगवर्द्धनम्

महिषीनवनीतच चलूकारक्तसयुतम् ॥ ३५५॥
गुंजानिर्यासतोमर्द्य जायते लिंगवर्द्धनम् ।

अथ स्तनदृढकरणम्

पारदं मर्दयेत तैलं ज्योतिष्मत्याः प्रयत्नतः॥ ३५६॥
पततः स्तनदीर्घं तु मर्दनादेव जायते।
कदली कुमुदकंर्द च अभया लौहचूर्णकम्॥ ३५७॥
नीलोदुम्बर वर्णी च मदयन्ती करोटका।
इक्षुरसतिलतैलं स्निग्धभाण्डे विनिःक्षिपेत्॥ ३५८॥
सुगात्रां यत्नतः कृत्वा रात्रौ पात्रं निधापयेत्।
स्थाप्य पात्रं मासमात्रं ततः पश्चात्समुद्धरेत्॥ ३५९॥

३५३-३५४. गृजिनी=गाजर? गोंद, जौंक, लांगली=कलिहारी? इनको भैंस के मक्खन में प्रयत्नपूर्वक मर्दन करे, पुनः योनि में लेपन करके तुरन्त समभाग करे तो स्वभावतः योनिवृद्धि हो जाती है।

लिंगवर्द्धन

३५५. भैंस के मक्खन में जौंक का रक्त, गुंजा=चिरभटी का गोंद मर्दन करके लिंग पर लेप करने से लिंग बढ़ जाता है।

स्तन दृढ़ करना

३५६. पारे को मालकांगनी के तैल में मर्दन करें। इसके मर्दन=मालिश से ढीले और गिरे हुये स्तन कठोर हो जाते हैं।

श्याम केशकारक योग

३५७-३५८. केले और कमल का कन्द, हरड़, लौहभस्म, नील, उदुम्बरवर्णी=मदयन्ती करोटका=गन्ने का रस, तिल का तैल इनको चिकने घड़े में रात्रि के समय भरकर रख दें।

३५९-३६०. एक मास पश्चात् तैल निकालकर श्वेत केशों पर

पलितं लेपयेद् धीमान् तिष्ठेनाम तथातपे।
यावत् षण्मासकं केशा भ्रमराकारतां व्रजेत्॥ ३६०॥

अथ कृष्णदन्तावलिकरणम्

शिवाफलं लौहचूर्णं मर्दयित्वा विचक्षणः।
दन्तेषु धारयेद् रात्रौ रंजिताः स्युस्त्रिरात्रयः॥ ३६१॥

अथ रोमनाशनम्

क्रमुकस्य दलं द्रावैर्हरिद्रासंसयुतम्।
पारदं टंकणं नालं स्वर्जिकाक्षमेव च॥ ३६२॥
शंखचूर्णं समं कृत्वा लेपनाद रोमनाशनम्।
हस्तिदन्तसं कृत्वा छागमूत्रं रसाजनम्॥ ३६३॥
लोमान्येतेन नश्यन्ति लेपनात्याणितलेष्वपि।

अथ मश्कनाशनम्

एरण्डनालसंग्राह्य शंखचूर्णेन धर्षयेत्॥ ३६४॥
काष्ठवदेहमासेन क्षमो भवति तत्क्षणात्।

लगाकर धूप में खड़ा हो जाये। लगातार छः मास तक इसी प्रकार लगाने से बाल भौरें की भांति काले जो जाते हैं।

दाँत काले करना

३६१. शिवाफल=और लौहचूर्ण को मर्दन करके तीन रात्रि तक दान्तों में लगाने से दाँत काले हो जायेंगे।

बाल नष्ट करना

३६२-३६३. पारा, सुहागा, नाल=स्वर्जिकाक्ष और शंखचूर्ण समभाग लेकर क्रमुक के पत्तों का रस और हल्दी के रस के साथ लेप करने से शरीर के रोम नष्ट हो जाते हैं। हाथीदांत, बकरे का मूत्र, रसाजन=रसौत? इनका यथाविधि शरीर पर लेप करने से रोम=लोम नष्ट हो जाते हैं। (यदि हथेली में बाल जमें हुये हों तो वे भी इस योग से नष्ट हो जाते हैं अन्य स्थान की तो बात ही क्या है?)

मच्छर नाशक योग

३६४. एरण्ड की नाल को शंख के चूर्ण के साथ घिसकर शरीर पर लगाने से एक मास में शरीर काठ की भांति हो जायेगा (इससे मच्छर नहीं काटेंगे।)

अथ मूकहरः

विहीनःस्यान् मूकवत्तिष्ठते सदा॥ ३६५॥

अथ दन्तरोगहरः

मर्दयेन्मधुना युक्तां प्रयत्नेन हरीतकीम्।
रक्षयेताम्रपात्रेण ततः पश्चात्समुद्धरेत॥ ३६६॥
वटकं कारयेद धीमान् दन्तमूलेन धापयेत्।
तद्यथा नाशयेत् सद्यः श्वासकासादिकं तथा॥ ३६७॥
भृंगराजस्य दूर्वाया रसैनाश्यं प्रदापयेत्।
नाशाय चार्शरोगस्य ज्ञानज्योतिमुनेर्वचः॥ ३६८॥
भृंगराजरसेन स्यात् शिरःपीडा प्रशाम्यति।
भक्ष्ये क्षीरमि शाकं शिरोभारनिवृत्तये॥ ३६९॥

अथ कुमुदप्रकाशरसः

भारंगी चाजमोदं च सैन्धवं चित्रमूलकम्।
त्रिफला त्रिकदुमुस्ता कर्चूरं च तथा स्मृतम्॥ ३७०॥

गूंगापन नाशक योग

३६५.

दन्तरोग नाशक योग

३६६-३६७. हरड़ को शहद के साथ मर्दन करके ताम्बे के पात्र में रख दे। कुछ समय बाद निकालकर गोली बना लें। इस गोली को दाँतों के रोग तथा श्वास-कास आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

३६८. भृंगराज को दूब के रस में मिलाकर नस्य देने से? इससे बवासीर रोग भी नष्ट हो जाता है।

३६९. भृंगराज के रस से शिरदर्द भी ठीक हो जाता है।

कुमुदप्रकाश रस

३७०-३७३. भारंगी, अजमोद, सौन्धानमक, चित्रमूल, त्रिफला, त्रिकुटा, कपूर, कचूर शुद्धगन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, सूत=शुद्धपारा, बायविडंग, पिप्पलामूल, इलायची, जायफल १-१ भाग, धतूरे के

धतूरबीजभागार्द्धं गन्धकं विषसूतकम् ।
विडंग पिप्पलीमूल मैला जातीफलं समम्॥ ३७१ ॥
अश्वगन्धा वचा हिंगुस्त्रिभागानि तथास्मृता।
पूर्वभागसमं युक्तं शुष्कं चूर्णं तु कारयेत्॥ ३७२ ॥
वारिणामर्द्दयेत् गुटिकां कुबेराक्षीसम् विदुः।
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञः सर्वरोगापनुत्तये॥ ३७३ ॥
तृतीये कामवृद्धिः रूपाच्चतुर्थे बलवर्द्धनम्।
पंचमे क्षुद्वृद्धिः स्यात् षष्ठे सौभाग्यमेव च॥ ३७४॥
जल्पनं तैलमिष्ठान्नं वनीनितो जितेन्द्रियः।
विकारान् हरते सर्वान् बुद्धिमारोग्यवर्द्धनम्॥ ३७५ ॥
कुमुदप्रकाश संज्ञो वै ज्ञानज्योतिरभाषत।
नवगोप्योरसः कार्यः सर्वं वै भवदायकः॥ ३७६ ॥
पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम्।
एरात्वक्यमुस्तानां पलमर्द्धं विनिःक्षिपेत्॥ ३७७ ॥

बीज आधाभाग, असगन्ध, वच, शुद्धहिंगुल तीन-तीन भाग इनको पीसकर महीन चूर्ण बना लें और पानी के योग से कुबेराक्षी=करंजबीज के बराबर गोलियां बना लें। सभी रोगों की निवृत्ति के लिये १-१ गोली का सेवन करे।

३७४-३७६. इस औषध के सेवन से तीसरे दिन काम (वासना) की वृद्धि हो जाती है, चौथे दिन बल बढ़ता है, पञ्चम दिन भूख में वृद्धि तथा छठे दिन सौभाग्य बढ़ जाता है। औषध सेवन के दिनों में व्यर्थ न बोलना, तैल और मीठे से बने पदार्थों का त्याग, स्त्री प्रसंग से दूर रहकर जितेन्द्रिय रहना आदि आवश्यक पथ्य है। यह सब बिकारों को दूर करके बुद्धि और अरोग्य को बढ़ाता है। ज्ञानज्योति आचार्य ने इसे कुमुदप्रकाश नाम से अभिहित किया है।

३७६. नवगोप्य नामक रस सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये है।

३७७-३८२. हरड़, चित्रक तीन-तीन पल भाग, इलायची, तेजपात, कपूर आधा पल भाग, त्रिकुटा, पिप्लामूल, त्रिफला, विष=शुद्धवत्कनाभ तीन-तीन (पल) भाग, नागकेशर १ कर्ष=६

त्रिकटुपिप्पलीमूलं त्रिफलाविष पलत्रिकम्।
नागकेशरचूर्णं च कर्षं दधाद् विचक्षणः॥ ३७८॥
रेणुका द्विपलं दधात्कर्षं गन्धकसूतयोः।
एतत्सर्वं समाहृत्य सूक्ष्मचूर्मं तु कारयेत्॥ ३७९॥
तुलार्द्धं च गुडं दधात्स......विचक्षणः।
ततश्च गुटिकाः कुर्यात्षष्ट्यधिकशतत्रयम्॥ ३८०॥
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञो मेहश्वासश्च कासजित्।
गलग्रहं चाण्डवृद्धिमशीतीन् वातजान् गदान्॥ ३८१॥
अरुचिं मूत्रकृच्छ्रं च प्रमेहान् विंशकीस्तथा।
स्थावरं जंगमं सर्वं विषं हन्ति भगन्दरम्॥ ३८२॥
लूतापस्मारमुन्मादयोजयेद्विषमज्वरे ।
बलेन गजतुल्यो वै वेगेन तुरगोपमम्॥ ३८३॥
मयूरस्य यथा वहिन श्रोत्रो वाराहसन्निभः।
त्रिषु स्यादवयतुल्यौऽसौ गृधदृशि प्रजायते॥ ३८४॥
भवत्येव चिरञ्जीवी नरो वर्षशतानि च।
तस्यात्र परिहारोऽस्ति यथामध्ये तथा तनूः॥ ३८५॥
श्रीमान भवेत्सेव्यमानो भोजनं चयथेच्छ्रया।
तथाहि विष्णुश्च पितामहोहरः मूर्द्धाभिषिक्तस्त्रिदशेश्वरश्च।

माशे, रेणुका=सम्भालू २ पल (२ भाग), गन्धक और पारा १-१ कर्ष=६ माशे, इन सबका सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इन सारे योग के तौल से आधा गुड़ लेकर उसके सहयोग से ३६० गोलियां बना लें। प्रतिदिन १-१ गोली का सेवन करने से २० प्रकार के प्रमेह श्वास, कास, ग्रलग्रह, अण्डवृद्धि, अस्सी प्रकार के नातरोग, भोजन में अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, स्थावर जंगम विष, भगन्दर,

३८३-३८५. लूता=जूँ, लीख, अवस्मार, उन्माद, विषमज्वर आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके सेवन से हाथी के समान बल, घोड़े के समान वेग, मोर की भांति जठराग्नि, वराह की भांति श्रवणशक्ति, गृध्र की भांति दूर दृष्टि की प्राप्ति होती है। व्यक्ति सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवित रहता है। इस औषध का सेवन करने वाला श्रीमान् हो जाता है और यथेष्ट भोजन कर सकता है।

३८६. जैसे विष्णु, पितामह=ब्रह्मा और शिव ये तीनों शेष ३०

अयं तथा सर्वरसादिकानां
योगो महाव्याधिहरो विशेषात्॥ ३८६॥

विजयागुटिका॥ अथज्वरांकुशः॥

पंचलोहसमं चूर्ण अभ्रकं हरीतालकम्।
अमृते सोमलं सूतं गन्धकं च तथामृतम्॥ ३८७॥
वज्रदन्तीरसैमर्द्यं समभागं च धीमता।
वटिका माषमात्राः स्युर्ज्वरांकुशरसो मतः॥ ३८८॥

अथ अतिभंजनोरसः

सोमलं च सनागं च सुतं गन्धकतालकम्।
कटुत्रपं कपर्द्दं च बीजानि कनकस्य च॥ ३८९॥
टंकणं समतच्चूर्ण शृंगवेराभयाद्रवैः।
शीतज्वरे सन्निपाते विशूचीविषमज्वरे॥ ३९०॥
एकाहिकाद्यानष्टौ तु ज्वरान् हरति वेगतः।
धान्यमात्रं प्रदातव्यं रोगिणां वैद्यकोविदैः॥ ३९१॥

देवताओं के मूर्धन्य हैं वैसे ही सब व्याधियों को दूर करनेवाला सब रसों में उत्तम यह नवगोप्य नामक रस है।

विजया गुटिका (ज्वरांकुश)

३८७-३८८. पञ्चलौह भस्म=( ), अभ्रक, हरताल, अमृत= , सोमल=संखिया, सूत=पारा, गन्धक ये समभाग लेकर वज्रदन्ती के रस की भावना देकर उड़द के दाने के बराबर (या १-१ मात्रा की) गोलियां बना लें। यह औषध ज्वरांकुश नाम से प्रसिद्ध है। सभी प्रकार के ज्वरों में अत्यन्त लाभकारी है।

अतिभंजन रस

३८९. सोमल=शुद्ध संखिया, नागभस्म, पारा, गन्धक, हरताल, त्रिकुटा, कौड़ीभस्म, धतूरे के बीज

३९०-३९३. सुहागा में समभाग लेकर अधरक और हरड़ के रस में खरल कर लें। चावल के समान मात्रा का सेवन करने से शीतज्वर, सन्निपात ज्वर, हैजा, विषमज्वर, एक दिन छोड़कर आने वाला आदि ८ प्रकार के ज्वरों को तुरन्त ठीक करता है। इस औषध को खाकर

स्वपेदाद्याय यत्नेन प्रस्वेदो यदि जायते।
तदा च जीवते रोगी अन्यथा न हि जीवति॥ ३९२॥
पथ्यं यथेच्छया देयं दधिशीतोदकादिकम्।
सन्निपातज्वरे कम्पयुक्तः सिद्धयति मानवः॥ ३९३॥
आर्त्तिभंजन संज्ञो वै रसो यतीभिरीरितः।
शतावरीमुस्ताभया भूनि वानि वानि वयः॥ ३९४॥
रोगिणां दीयते कार्यः सर्वज्वर निवृत्तये।
अस्थिमग्नं भवेद्यस्य कर्णिकाररसं पिबेतु॥ ३९५॥
अथवा रोहिणी दद्यात् अभ्यरे च सुनिश्चितम्।
भग्नशुल्वं भवेयतु दुष्टरक्तं विनाशयेत्॥ ३९६॥
शोभनं वाक्प्रसूतं चेत्कथमेव पिबेन्नरः।
ऊर्ध्व हिक्काश्वासमेव तत्क्षणादेव शाम्यति॥ ३९७॥
लज्जा चातीव दद्रुध्नीमग्निश्चेदेन बंधयेत्।
चक्षुव्याधि हरेद् वैद्यो रजनीत्रययोगतः॥ ३९८॥
कृष्णामूलं च पथ्या च वाराही च तृतीयका।
हरते क्षयकुष्ठादि मण्डलं वापि नाशयेत्॥ ३९९॥

कपड़ा ओढ़कर सो जाने पर यदि पसीने आ जाये तो रोगी जीवित रहता है, अन्यथा मर जाता है। औषध सेवन समय में दधि, छाछ और जल आदि पथ्य में देने चाहियें। सन्निपात ज्वर तथा कम्पनज्वर में लाभकारी है। वैद्यों ने इसे **आर्तिभञ्जनरस** नाम से कहा है।

३९४. शतावरी, कपूर, हरड़............इनका चूर्ण सभी प्रकार के ज्वरों की निवृत्ति के लिये रोगियों को दिया जाता है।

३९५-३९६. जिसकी हड्डी टूट गई हो तो उसे कर्णिकार= अमलतास का रस पिलाया जाये तो लाभ होता है अथवा रोहिणी= कुटकी का सेवन कराया जाये।

३९६. भग्न शुल्व? ताम्रभस्म रक्तशोधक होती है।

३९७. ऊर्ध्वश्वास और हिचकी को तुरन्त ठीक कर देता है

३९८. लज्जावती औषधि दाद का अत्यन्त नाश करने वाली है। यदि इसे अग्नि वैद्य जन तीन प्रकार की हल्दी के योग से आँखों के रोग नष्ट कर देते हैं।

३९९-४००. कृष्णामूल, पथ्या और वाराही तपेदिक, कुष्ठ और

विदारीकन्दः सितया सर्वपित्तं विनाशयेत्।
तथा हि गुल्मदोषं च शिरोर्त्तिं च व्यपोहति॥ ४००॥
शिवपथ्या च तेजोका कोविदारो गजकर्णिका।
समीरहन्य सम्यगात्र गुल्मं विचर्चिकाम्॥ ४०१॥
कृमिहा वनीतेन सप्ताहं भक्षयेत्सुधीः।
भ्रामरी मुसली ग्राह्य श्यामं च क्षौद्रसंयुतम्॥ ४०२॥
मंडलं भक्षयेद्यस्तु वातरोगं हरते तदा।
रण्या राजीहंशिल्लजा निद्रांगी च कनेश्वरी॥ ४०३॥
शंखवटी चन्द्रस्फों पर्पटा मदनेश्वरी।
प्रियगु ब्रह्मदण्डी च ज्योतिष्मती हरीतकी॥ ४०४॥
तालमूली च मण्डूकी कोकिला विषमुष्टिका।
सर्पिर्मधुसितायुक्तं मेध्यमुनि जितेन्द्रियः॥ ४०५॥
मलकः पादपः श्लेष्म शीलांचलशुनध्रुवम्।
गंधागन्धा कर्णयोगे कर्णयोगं प्रशाम्यति॥ ४०६॥

मण्डल रोग को नष्ट करते हैं। विदारीकन्द मिश्री के योग से सभी प्रकार के पित्त को नष्ट करता है। इसी प्रकार गुल्म दोष और शिर:पीडा को दूर करता है।

४०१-४०२. शिवपथ्या, तेजोका=तेजबल ? कोविदार=कचनार, गजकर्णिका, इनके सेवन से वायुरोग, गुल्म तथा विचर्चिका=रोग नष्ट हो जाते हैं। मक्खन के साथ सात दिन तक इनका सेवन करने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

४०२. भ्रामरी, मूसली, श्याम क्षौद्र, मंडल=इनका सेवन करने से वात के रोग नष्ट हो जाते हैं।

४०३. रज्या, राजीहं, शिल्लजा, निद्रांगी, कनेश्वरी, शंखवटी, चन्द्रस्फोट, पर्पटा, मदनेश्वरी, प्रियंगु, ब्रह्मदण्डी, ज्योतिष्मती=मालकांगनी, हरीतकी=हरड़, तालमूली, मण्डूकी, कोकिला, विषमुष्टिका को घी मधु और सिता=मिश्री से युक्त करके सेवन करें तो यह बुद्धिवर्द्धक और जितेन्द्रिय मुनियों के सेवन करने योग्य हैं।

४०६. मलक, पादप...
....।

न्यग्रोधनामाग्निपथ्याश्रीतालिकाश्मरी तथा।
श्रीपर्णी चकणावांगी कामेश्वरीलजावती॥ ४०७॥
अश्मन्तकं शतदला भार्गी च गिरिकर्णिका।
क्षुद्रायुक्तं सितज्यं च भक्षयेन्मण्डलद्वयम्॥ ४०८॥
सर्वरोगाः क्षयः यान्ति कल्पजीवो भवेन्नरः।

अथ महार्णवरसः

विषं सूतं गन्धकं च तालकैः सह पेषयेत्।
वज्रदन्तीरसैर्मर्द्या गुटिका माषमात्रकाः॥ ४०९॥
एकैकं भक्षयेद् यस्तु मजज्वरविनाशनम्।
हरते सर्वरोगांश्च महार्णवरसो मतः॥ ४१०॥
नीलपुष्पी वत्सनागं सेमलं हरितालकम्।
पुष्पदन्तीरसः पश्चात् वटकं मुद्गभात्रकम्॥ ४११॥
विजयप्रताप नामा सर्वरोगान् प्रशाम्यति।
हरते ग्रहणीरोगं ज्वरमेकान्तरे हरेत्॥ ४१२॥

अथ पंचगुल्महरः

चित्रमूलं हरीतक्या वज्रदन्ती च सैन्धवम्।
अजमोदं व्योषमेकं गुटिकां समभागतः॥ ४१३॥

४०७-४०८. न्यग्रोध=वटवृक्ष, अग्निपथ्या, श्रीतालीका, कामेश्वरी, लज्जावती, अशमन्तकं, शथदला, मार्गी=ब्राह्मी, गिरिकर्णिका, क्षुद्रा, इनके चूर्ण को मिश्री और घी के साथ-साथ सेवन करने से सारे रोग दूर होकर व्यक्ति दीर्घकाल तक जीवित रहता है।

महार्णवरस

४०९-४१०. वत्सनाभ, पारा, गन्धक और हरताल इनको पीसकर वज्रदन्ती के रस में मर्दन करकें उड़द के समान गोलियां बना लें। एक-एक गोली का सेवन करने से ज्वर ठीक हो जाता है।

४११-४१२. नीलपुष्पी=विष्णुकान्ता=अपराजिता? वत्सनाग, सेमल, हरताल इनको पीसकर पुष्पदन्ती के रस से मूंग के बराबर गोलियां बना लें। यह विजय प्रताप नामक रस संग्रहणी और तृतीयक ज्वर को ठीक करता है।

४१३-४१४. चित्रकमूल, हरड़, वज्रदन्ती=मौलसरी, सैंधानमक,

कुबेराक्षिमिताः कुर्यात् पंचगुल्मनिवृत्तये।
हरते सर्वरोगांश्च ज्ञानज्योतिमुनोर्वचः॥ ४१४॥
चित्रकं व्योषवाहलीकमजमोदं च सैन्धवम्।
मनःशिलाफल पथ्या रेणुकारसगन्धकम्॥ ४१५॥
एतत्समासतः पष्यमद्भिर्न च गोलकम्।
कुष्ठगुल्मगुदार्शांसि योनिभगं क्षयं तथा॥ ४१६॥
प्लीहश्वासकासौ च कंडूपाण्डुविनाशनम्।
हरते सर्व रोगांश्च क्षुधा चैव विवर्धतेद्॥ ४१७॥
मुग्धबोधरसो नाम त्रैलोक्यसुखदायकः।
तुडी च शतमूली च कन्यापाला सबिल्वकम्॥ ४१८॥
मन्दारबदरीधूर्ति जयन्ती मुनिमूलिकः।
स्नुह्यपामार्गपालाश बलवती तथा॥ ४१९॥
धातुकीकुसुमं ब्राह्मी हिंगुश्च खदिरं तथा।
मंजिष्ठादारुरजनी चन्दनं रक्तचन्दनम्॥ ४२०॥
करवीरचित्रमूलं च अश्वगन्धा सुगन्धिकम्।
वचा च ग्रन्थिभारंगी कुष्ठं सुगन्धग्रन्थिनी॥ ४२१॥

अजमोद, व्योष=ये सब समान भाग लेकर पीस लें और पानी के योग से झाड़ी के बेर के बराबर गोलियां बना लें। इसके सेवन से पांचों प्रकार के गुल्म नष्ट हो जाते हैं।

४१५-४१६. चित्रक, व्योष=सोंठ, वाह्लीक=खुरासानी अजवायन, अजमोद, सैंधा नमक, मैनसिल, पथ्या, रेणुका, रस=पारा, गन्धक ये सब समभाग लेकर पीस लें और पानी के योग से गोलियां बना लें।

४१६-४१७. इनके यथाविधि सेवन से कुष्ठ, गुल्म, गुदारोग, बवासीर, योनिभंग, क्षय, प्लीहा, श्वास, कास, खुजली, पीलिया आदि रोग नष्ट हो जाते हैं तथा भूख भी बढ़ती है यह मुग्धबोध नामक रस तीनों लोकों में सुखदाक कहा गया है।

४१८. तुड़ी, शथमूली=शतावर, कन्यापाला, बेला मन्दार=आक, बदरी=बेर, धूर्ति, जयन्ती, मुनिमूलिक, स्नुही=थोहर, अपामार्ग, पलाश, बलवती..........................

४२०-४२७. धातुकी कुसुम=धाय के फूल, ब्राह्मी, हिंगु=हींग ? खदिर, मजीठ, दारुहल्दी, सफेद और लाल चन्दन, करवीर=कनेर

मत्स्याक्षी यत्नतो ग्राह्या सर्प्पाक्षीकरमूलिका।
जलस्तम्भा तथा पाठा शाल्मली श्लेष्मपादपः॥ ४२२॥
त्रिकटुस्त्रिफलाजीरे अजमोदनिम्बवासकम्।
लशुनं चाकोलनिम्बं मुस्तजोयतिष्मतीसुरम्॥ ४२३॥
सोमराजीभृंगराज वृक्षप्रमाणकम्।
एतेषां चैव मूलानां समानेनैव चूर्णकम्॥ ४२४॥
एको भागस्तु चूर्स्य तिलतैलं त्रिभागकम्।
एवं सतैलं स्थान्नवधाग्नि प्रदीप्यते॥ ४२५॥
शीतलं च ततः कृत्वा वस्त्रपूतं विधाय च।
अष्टांगे मर्दनं कुर्यात्सर्वरोगप्रशान्तये॥ ४२६॥
तैलमाज्यसमकृत्वा प्रातरुत्थाय भक्षयेत्।
तैलपाकासमर्थश्चेत्तच्चूर्णं भक्षयेन्तरः॥ ४२७॥
शृणु शिष्य महश्चर्यं व्याधिनाशनं साम्प्रतम्।
ऊर्ध्ववातं च विण्मूत्रं देहवातं च कण्ठजम्॥ ४२८॥

चित्रमूल, अश्वगन्ध, सुगन्धिक=वचा, भारङ्गी, ग्रन्थी, कुठ, सुगन्धग्रन्थिनी, मत्स्याक्षी=मत्स्यगंधा (ब्राह्मी), सर्प्पाक्षी=सरहटी (पातालगरुड़), करमूलिका, जलस्तम्भिका=जलजमनी, पाठा, शाल्मली=सेमल, श्लेष्मपादप=लिसोड़ा? त्रिकुटा, त्रिफला, अजीर=अजमोद, नीम की छाल, लहसुन, अंकोल, नीम की गिरी, कपूर, मालकांगनी, सुर=सोमराजी=बावची (जंगली जीरा), भृंगराजमूल सहित ये समभाग लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण से तीन गुना तिल का तैल लेकर चूर्ण को तैल में डालकर अग्नि पर पकायें। इसी प्रकार तैल डाल-डालकर नौ वार पकायें। पुनः शीतल होने पर कपड़छान करके शरीर के आठों अंगों (दो पैर, दो हाथ, सिर, छाती, पेट पीठ) पर मर्दन करने से सभी रोग शान्त हो जाते हैं। इस तैल के बराबर घी मिलाकर प्रातः उठकर यथेष्ट भक्षण करे। यदि इस तैल को नहीं खा सके तो उपर्युक्त चूर्ण को घी से सेवन करे।

४२८-४३१. आचार्य ज्ञानज्योति अपने शिष्य से कहते हैं—हे शिष्य! सुन! इस उपर्युक्त तैल के मर्दन और भक्षण से निम्न प्रकार के वातरोग शान्त होते हैं—ऊर्ध्वपात, उपस्थ और गुदस्थानीयवात, सारे शरीर में व्याप्त वात, कण्ठगत वात, रक्तवात, पित्तान्तर्गत वात

रक्तवातं च पित्तं वा ग्रन्थिवातं तथैव च।
कटिवातं घूर्णवातं निद्रावातं च जृम्भणम्॥ ४२९॥
हिक्कावातमन्धवातं रसवातं च कम्पनम्।
बलवातं सन्धिवातं श्रोत्रं नेत्रं तथैव च॥ ४३०॥
वातं सुमुरं च नाडीवातं च चार्शा च वज्रकम्।
श्लेष्मवातं स्वादुहीनं गुदावर्त्ताऽनं तथा॥ ४३१॥
वायुहीनं कशान्नोच्च आमवातं त्रिदोषजम्।
कटिवातं च मधुरमम्लवातं त्रिदोषजम्॥ ४३२॥
विशूचिकं कुक्षिवातं चान्त्रशूलजशूलजम्।
हिक्कावातं मुसली ताम्रवातजम्॥ ४३३॥
स्युरवारं चाम्र वातं विमतिकारकम्।
श्वासवातं चक्रवातं शिरोवातं च पार्थिवम्॥ ४३४॥
इत्यादिवातजान् रोगान् कामलां च विनाशयेत्।
ताम्रकुष्ठं रक्तकुष्ठं दडुजं वेवनि तथा॥ ४३५॥
उदम्बरगलत्कुष्ठं चर्म्मकुष्ठं च सर्प्पकम्।
वदिरपादयोः पंगु तथा स्फुचितमन्तके॥ ४३६॥

छोटे जोड़ों का वायु, कटिवात, घूर्ण, स्थितवात, निद्रा से उत्पन्न वायु, जम्भाई, हिचकी, अन्धवात, कच्चे रस से उत्पन्न वात, कम्पवात, बलवात, सन्धिवात=घुटने कोहनी, आदि में स्थित वायु, कान और आँखों में रहने वाला वायु, छाती, नाडी में स्थित वात कफ मिश्रित वात.........

४३१-४३२. ....पौष्टिक पदार्थों के अधिक सेवन से आमवात तथा मीठे और खट्टे पदार्थों के सेवन से कटिवात और त्रिदोवज वात उत्पन्न होता है।

४३३. विशूचिका=हैजा, कुक्षिवात=पार्श्वशूल, आन्त्रशूल, शूल की पीडा, हिक्कावात= हिचकी= ऊर्ध्ववात, मुसली, ताम्रवातज

४३४. ....विमतिकारक=उन्माद जैसा बुद्धिभ्रंशक रोग श्वास, चक्रवात, शिर:पीडा, पार्थिक

४३५-४३७. इत्यादि वातरोग और कामला (पीलिया) रोग इस तैल के सेवन से दूर हो जाते हैं। ताम्रकुष्ठ=लालचकत्तों वाला कोढ़,

इत्यादि कानि कुष्ठानि तैलमेवं विनाशयेत्।
महाक्षयं कुष्ठजं च दद्रुं चैव विनियते॥ ४३७॥
स्फोटका निम्बकासं च ऊर्ध्वश्वासं तथैव च।
तैलस्य चास्य भावेन रोगराजोऽपि शाम्यति॥ ४३८॥
दधिदुग्धमधुत्यापं क्षीणं शैत्यं तथैव च।
विडुपातं च पाषाणं शूलरोगं निहन्ति च॥ ४३९॥
मुत्रकृच्छ्रं कण्ठशोषं मण्डशूलं च लिंगजम्।
इत्येवमादिकानन्यान् प्रमेहास्तैलयोगतः॥ ४४०॥
सन्निपातं तथा शैत्यं महाशीतं ज्वर तथा।
तप्तस्वेदां तथा क्षीणं हास्यस्तूच्चैन्द्रियं तथा॥ ४४१॥
ग्रहणीरक्तशूलं च समशूलं तथोदरम्।
लालाशूलं तेजविन्दु वायुशूलं दधिद्रवम्॥ ४४२॥
दुग्धस्त्रावं मांसमधुद्रवं मत्स्यमृगयुतम्।
संग्रहणी मूत्राजीर्णमित्यादीन् रोगकान् रहेत्॥ ४४३॥

रक्त में मिश्रित कुष्ठ..............................गलित कुष्ठ, चर्म्मकुष्ठ, सर्प की भांति चकत्तों वाला कुष्ठ................पैरों का लंगड़ापन हाथ पैरों के छोर पर फोड़ों वाला कुष्ठ इत्यादि अनेक प्रकार के कुष्ठ इस तैल के लगाने, मर्दन करने और खाने से ठीक हो जाते हैं। भयंकर तपेदिक और कुष्ठ से उत्पन्न दाद भी इसके लगाने से ठीक होते हैं।

४३८. स्फोटक=फोड़े-फुंसी, खांसी, ऊर्ध्वश्वास तथा क्षयरोग भी इस तैल के सेवन से नष्ट हो जाते हैं। औषध सेवन करते समय दही, दूध, मधु..............और छाछ का सेवन.................।

यह तैल वीर्य दोष (स्वप्नदोष, शीघ्रपतन), पथरी, शूल, कष्ट से मूत्र आना, कण्ठ का सूखना, लिंग (शिश्न) से उत्पन्न मण्डशूल, और प्रमेह, सन्निपात, शीतांग, महाशीत ज्वर, गर्म पसीना आना, क्षीणता, संग्रहणी, रक्तशूल, समशूल, उदरशूल, लाला=राल स्थानीय शूल, तेजशूल, वायुशूल, दधिद्रव

४३९-४४६. दुग्धस्त्राव=दूध का बहना, मांस की शिथिलता, मधुमेह ? मूत्ररोग, अजीर्ण इत्यादि रोगों को दूर करता है। फोड़े और शूल रोगों को तो यह तैल स्पर्श मात्र से ही ठीक कर देता है।

स्फोटकं शूलदोषं च इत्यादीन् स्पर्शनाद् हरेत्।
कृमिदोषमपस्मारं पित्तस्य चातिरेकतः॥ ४४४॥
कण्ठार्शघटिकाविदु तथाऽश्मरीका स्मृता।
क्राश्च वीलस्तम्भजलकाकन्दवर्द्धनम्॥ ४४५॥
देवदोषाननेकांश्च भूतप्रेतादिकं तथा।
इत्येवमादिकान् रोगान् हन्ति तैलप्रशाधनात्॥ ४४६॥
उन्मादं सन्निपातं च मन्त्रदोषेण वर्द्धनम्।
शिरस्तीदं तथा षष्टेरक्तपित्ताम्लपित्तजम्॥ ४४७॥
भारश्रमं मैथुनं च पथिषु लेपनाद् हरेत्।
नणां हरेत्कर्णपीडां नेत्रपीड़ा तथैव च॥ ४४८॥
तैलं क्रव्यादसंज्ञं तु ज्ञानज्योतिविभाषितम्।

इति क्रव्यादतैलचूर्णम्

अटवीरा सहचरी निर्गुण्डीमूलपत्रकम्।
भक्षणं माषमात्रेण सर्वज्वरविनाशनम्॥ ४४९॥
अभयासहितं निम्बत्वक्पत्रेन च कल्पयेत्।
प्रभाते त्रिदिनं पेयं सर्वज्वरविनाशनम्॥ ४५०॥

कृमिरोग (कृमि से उत्पन्न दोष), अपस्मार (मृगी), पित्त की बहुलता, कण्ठोरोग, बवासीर, घटिकाविंदु, अश्मरी=पथरी, जलूकन्द का बढना, भूत प्रेतादिक दैवकृत दोष इत्यादि रोग इस तैल के प्रयोग से नष्ट होते हैं।

४४७-४४८. उन्माद, सन्निपात, मन्त्रदोष से बढ़ा हुआ रक्तपित्त और अम्लपित्तज दोष, बोझा उठाने, परिश्रम करने, मैथुन करने और मार्ग चलने से उत्पन्न थकावट को यह तैल मर्दन करने से ठीक कर देता है। कर्णपीडा और नेत्रपीडा को भी यह तैल ठीक कर देता है। आचार्य ज्ञानज्योति ने यह क्रव्यादनामक तैल कहा है।

४४९. अटवीरा, सहचरी=शतावर, निर्गुण्डी (सम्भालू) की जड़ और पत्ते ये समभाग लेकर इनका चूर्ण बना लें। एक मासा चूर्ण का सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वर ठीक हो जाते हैं।

४५०. हरड़, नीम की छाल और पत्ते (अथवा नीम की निमौली की गिरी और तेजपात) ? का प्रातःकाल खालीपेट तीन दिन तक

सप्तकत्रयमात्रेण दिनं च प्रातरेवहि।
सर्वज्वराणां वेगानां नान्यथा मुनिभाषितम्॥ ४५१॥
सप्तकत्रयमात्रेण श्वासकासादिकं हरेत्।

अथ महाज्वरः

निगृह्य कुटज्ञं मूलं पेषयित्वाथ कलपयोत्॥ ४५२॥
पिप्पली चानुपानेन पित्तज्वमपोहति।
काशीरफल कुटजं मेलयित्वाऽथ कल्कये्॥ ४५३॥
शृगवेरानुपानेन नाशयेच्चा महाज्वरान्।
सहचरीवसमूलानं कल्कयित्वा पिबेन्नरः॥ ४५४॥
अनुपानेनकटुकी कृमावातज्वरं हरेत् ।
त्रिवासाक्वाथपानेन सर्वकुष्ठं व्यपोहति॥ ४५५॥
त्रिवासाचूर्णयुक्तेन क्वाथेनापिविशेषतः ।
सर्वानपि हरेत् दूतना नान्यथा परिभाष्यते॥ ४५६॥

सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वर ठीक हो जाते हैं। इसी औषध को यदि २१ दिन तक प्रात:काल सेवन किया जाये तो प्रत्येक प्रकार का ज्वर और श्वास कास आदि भी ठीक हो जाते हैं।

महाज्वर की चिकित्सा

४५२. कुटजमूल को पीसकर छोटी पीपल के साथ सेवन करने से पित्त से उत्पन्न ज्वर शान्त हो जाता है।

४५३. काश्मीरफल= और कुटज को पीसकर कल्क बना लें इसे अदरक के रस के साथ सेवन करने से महज्वर भी नष्ट हो जाता है।

४५४. सहचरी=शतावार और वस मूलान्त= की जड़ का अग्रभाग का कल्क बनाकर (पानी में पीसकर) कटुकी के सात सेवन करने से वातज्वर नष्ट हो जाता है।

४५५. इसी औषध को तीनों प्रकार के बांसा के क्वाथ से सेवन करने से सभी प्रकार का कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है।

४५६. इसी उपर्युक्त चूर्ण को तीनों प्रकार के बांसा के चूर्ण और बांसा के क्वाथ के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं।

एकैकेन त्रिवासाया महाकुष्ठं विनाशयेत्।
कंटके सेनकमानीय पिण्डं कृत्वाऽथ धीमतो।४५७।
दन्तमूले तथाप्यण्डरं दन्तपीडा विनश्यति।
वज्रदन्ती चूर्णकं तु भक्षणात् श्वासकासहः॥ ४५८॥
गंरावरावणाबिल्व मलोमोक्षोभवेन्नृणाम् ।
मेघनादजलद्रावैर्मलज्वरविमोक्षणम् ॥ ४५९॥
स्नुहीक्षीरान्नपिष्ठेन रोटिकां भक्षयेन्नरः।
ज्वरशान्ति र्भवेच्चाष मलमोक्षश्च जायते॥ ४६०॥

अथ ग्रहणीकपाटः

भागं पारदशुद्धस्य द्विभागो गन्धकस्य च।
अभ्रकस्य त्रयोभागा धूर्तबीजस्य भागकम्॥ ४६१॥
अहिफेनस्य भागोऽपि मेलयित्वा प्रयत्नतः।
प्रयत्नपूर्व वैद्येन सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥ ४६२॥
नागवल्लीदलद्रावैः पुटं त्रितयकं मतम्।
भृंगराजरसैस्तद्वदकोलस्य तथा रसैः॥ ४६३॥

४५७-४५८. अकेले त्रिवासा के सेवन से महाकुष्ठ भी नष्ट हो जाता है। कण्टक.............दांत की जड़ में अण्डर=दांती की पीडा नष्ट हो जाती है। वज्रदन्ती=मौलसिरी का चूर्ण खाने से श्वास और कास नष्ट हो जाता है।

४५९-४६०. गेरावरावणा=और बिल्व=बेलगिरी के सेवन से उदर-गत मल और आतों से चिपका हुआ मल छूट जाता है। मेघनाद के रस के सेवन करने से ज्वर और मल दोनों से छुटकारा मिल जाता है।

थोहर के दूध में आटा गूंथ कर उसकी रोटी खाने से ज्वर ठीक हो जाता है तथा आंतों में चिपका मल छूट जाता है। (आटा गूंधते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि आटा गूंथने के लिये जो जल लिया जाये उसमें दसवां भाग थोहर का दूध होना चाहिये)।

४६१-४६२. शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, अभ्रकभस्म, तीन भाग, धतूरे के बीज तथा अहिफेन=अफीम एक-एक भाग लेकर यत्नपूर्वक मिलाकर मर्दन करे।

४६३-४६६. इस मर्दित चूर्ण में नागरपान के रस, भृंगराज के

अत्यन्तं मर्दनं कृत्वा वटकं मुद्गसदृशम्।
कृत्वा तक्रेण भक्षेत ग्रहणीनाशकारकम्॥ ४६४॥
सायं प्रातः पिबेद्यस्तु ग्रहणीक्षयहेतवे।
ग्रहणीकपाटनामा स्याज्ज्ञानज्योतिभिरीरितः॥ ४६५॥
ततः किं बहुनोक्तेन त्वचां रुक्समुद्भवम्।
पातव्यं तक्रयोगेन ग्रहणीनाशहेतवे॥ ४६६॥
यदि न जायते तस्य तदानी पतिनान्यथा।
अतिसारादिकं मेहमेतत्पानेन शाम्यति॥ ४६७॥
अंकोलबीजं तक्रेण पानाच्छीघ्रं महानपि।
अतीसारो व्रजत्येव ग्रहणीनां च का कथा॥ ४६८॥
अंकोलत्वचमानीय तक्रेण सह कल्कयेत्।
वस्त्रेण गालितं कृत्वा पुनस्तत्कल्कयेद् दृढम्॥ ४६९॥
अंगुल्या लेहयेद्धीमान् ग्रहणीनाशहैतवे।
नागार्जुनीप्रयोगेन गुदालेपात् प्रशाम्यति॥ ४७०॥

रस और अंकोल के रस की तीन-तीन भावनायें देकर अत्यन्त महीन कर लें। पुनः मूंग के दाने के बराबर गोलियां बना लें। इन गोलियों का यथाविधि प्रातः सायं तक (छाछ) के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। आचार्य ज्ञानज्योति ने इसे ग्रहणीकपाट नामक रस कहा है। इस रस के सेवन से त्वचा स्वर्ण के समान आभा से युक्त हो जाती है।

४६६-४६८. इस रस का सेवन छाछ (तक) के साथ करना चाहिए। यदि इसके सेवन से रोग दोबारा उत्पन्न न हो तो उस समय.......इसके सेवन से अतिसार और प्रमेहरोग शान्त हो जाते हैं। अंकोलबीज को तक्र के साथ पीने से महाअतिसार भी तुरन्त ठीक हो जाता है। पुनः ग्रहणी रोग के ठीक होने में सन्देह ही क्या है?

४६९-४७०. अंकोल छाल को तक्र के साथ पीसकर कल्क (लुगदी) बना लें। उस लुगदी को कपड़छान कर लें और पुनः तक्र से लुगदी बना लें। इसे यदि अंगुली से चाट कर सेवन किया जाये तो ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। नागार्जुनी के साथ उपर्युक्त कल्क को गुदा पर लेप करने से ग्रहणी रोग शान्त हो जाता है।

बहिस्था सापि सदेहं विनिहन्याच्च निश्चितम्।
जलं कृकेकमज्जाभ्यां तण्डुलैः सह पेषयेत्॥ ४७१॥
रोटिकां भक्षयेद् धीमान् अपस्मारं निवारयेत्।
सप्तरात्रिप्रयोगेन नान्यथा मुनिरब्रवीत्॥ ४७२॥
अश्विने कार्तिके वापि कुष्माण्डकुसुमेषु च।
रगभृंगादितोजन्तु सर्वभृंगेषु सम्भवेत्॥ ४७३॥
भक्षयेच्च तमानीय क्रंचुटानाच योगतः।
भागैकं तस्य संगृह्य कीटपीडा प्रशाम्यति॥ ४७४॥
जलसर्पपलं नीत्वा सर्पदष्टेन भक्षयेत्।
शीघ्रं देयं भक्षणाय सर्पदष्टंविषं रहेत्॥ ४७५॥
महिषीगोमयं युक्तं सर्पदष्टेषु दापयेत्।
मण्डूक तैलतो मर्द्यं सर्ववातप्रशान्तये॥ ४७६॥
मण्डूकस्य पलं भक्षयेत् सप्ताहं सर्ववायवः।
पलायन्ते तथा शीघरं नान्यथा मुनिरब्रवीत्॥ ४७७॥

---

४७१. यह लेप शरीर के बाहर रहते हुये भी शरीर से लगा होने से निश्चित ही ग्रहणी रोग को नष्ट कर देता है।

४७१-४७२. जल केकडा और मज्जा को चावलों के साथ पीसकर यदि उसकी रोटी बनाकर सात रात्रि तक खायें तो अपस्मार की निवृत्ति हो जाती है। यह सत्य है ऐसा ग्रन्थकार मुनि का कथन है।

४७३-४७४. अश्विन या कार्त्तिक मास में कुष्माण्ड (पेठे) के फूलों में और भौरों आदि के द्वारा पराग प्रदान करने से अथवा सभी कीटपतंगों द्वारा पराग छोड़ने से फूलों में विशिष्ट गुण आ जाते हैं। उन पुष्पों को क्रचुनाटाच के साथ सेवन करे। उसमें से थोडा सा भाग लेकर सेवन करे तो विषैले जन्तु के काटे हुए की पीड़ा को शान्त कर देता है।

४७५-४७६. यदि सांप काट ले तो रोगी को पानी के सांप का छटाक भर भाग तुरन्त खाने को दे तो सर्पदंश का विष दूर हो जाता है।

४७६-४७७. मेढ़क के तैल की मालिश करने से सारे वात रोग शान्त हो जाते हैं। यदि छटाक भर मेंढक का सेवन सात दिन तक किया जाये तो सभी प्रकार के वायुरोग तुरन्त ठीक हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है, ग्रन्थरचयिता मुनि का ऐसा कथन है।

अन्यमूर्च्छा भवेद्यस्य पाठामूलं समाहरेत्।
पिष्टोदकेन नेत्राणामञ्जने क्रियते क्षणातु॥ ४७८॥
भक्षणीयं प्रयत्नेन धान्यमूर्च्छा प्रशाम्यति।
नालीकेरसमानीय तन्मध्ये मूलकं क्षिपेत्॥ ४७९॥
पुष्करं लशुनं तत्र कल्कयेत्पयः सदृशम्।
प्रहरद्वयमात्रेण ततः पश्चात् समुद्धरेत्॥ ४८०॥
हृदयकमल मध्यस्थमूर्ध्ववातो भवेद्यदि।
भक्षणे तस्य तद्देयं तोलकं तु दिनत्रयम्॥ ४८१॥
ऊर्ध्वश्वासः क्षणात्तस्य भक्षणादेव शाम्यति।
सजलं नालिकेरं समानीय विचक्षणः॥ ४८२॥
मुखं कुर्याच्च तन्मध्ये हिंगुकर्षमितं क्षिपेत्।
तण्डुलाकर्षमात्रेण किंचिच्च लवणं तथा॥ ४८३॥
वदनं तन्मुखं वद्ध्वा गर्त्तोऽयं बाहुमात्रतः।
मांस तत्रैव संस्थाप्य ततः पश्चात् समुद्धरेत्॥ ४८४॥
क्रमेण भक्षयेद्धीमान् प्लीहरोगापनुत्तये।
सयातं मरिचैर्युक्त भ्रमवातं प्रशाम्यति॥ ४८५॥

४७८-४७९. यदि किसी को धान्यमूर्च्छा हो जाये तो पाढा की जड़ को पानी के साथ पीसकर आँखों में अंजन की भांति लगा दिया जाये तो मूर्च्छा उसी क्षण दूर हो जाती है। यदि इसका सेवन भी किया जाए तो धान्यमूर्च्छा रोग शान्त हो जाता है।

४७९-४८२. नारियल के रस में मूली काटकर डाल दें। पुनः पुष्कर=पोहकर और लहसुन का पानी जैसा कल्क बनाकर उसी रस में डाल दें। दो प्रहर=तीन घण्टे पश्चात् निकाल लें। यदि हृदय कमल के निकट स्थ वात की ऊर्ध्वगति होती हो तो तीन दिन तक १-१ तोला इसका सेवन करने से ऊर्ध्ववात का विकार नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार ऊर्ध्वश्वास भी इसके प्रयोग से तत्क्षण नष्ट हो जाता है।

४८२-४८६. पानी सहित नारियल लेकर उसमें एक छिद्र कर लें। उस छिद्र के द्वारा उस नारियल में एक कर्ष=छः माशा हींग, एक कर्ष चावल तथा थोड़ा सा लवण डालकर नारियल का मुख बन्द कर दे। पुनः एक बाहु जितना गहरा गढ़ा खोदकर उस नारियल को एक मास तक उस गढे में दबा दें। पुनः उस नारियल को निकालकर कूट

दुकूलं पञ्चगुल्मं च गुदभगं शिरोव्यथा।
हिक्कातर्दिरजीर्णादिवातपित्तादिकं हरेत्॥ ४८६॥
विकृतिजीयते नृणां धातूनां भक्षणे यदि।
तेषां प्रशान्तिसिद्ध्यर्थं सितांग विनया च येत्॥ ४८७॥
वीरमूलं समानीयं सर्वदष्टस्य च व्रणे।
पेषयित्वा प्रयत्नेन तत्र लेपो विधीयते॥ ४८८॥
तत्क्षणादेव तेन स्यात् सप्ताहात्तत्प्रशाम्यति।
त्रिशिरं त्रिफला यस्तु षेषणीयं प्रयत्नतः॥ ४८९॥
भृंगराजरसे स्थाप्य अहोशत्रं दृढात्मनम्।
ततः पश्चात्समुद्धृत्य मर्दयेद् वापि बुद्धिमान्॥ ४९०॥
रसकमलबीजस्य लौहमण्डूरकं तथा ।
मर्दयेत् त्रिद्वयंसम्यक् मानार्द्धं तैलमध्यतः॥ ४९१॥
कल्कयेत् प्रहरं यावत् ततः पश्चात् समुद्धरेत।
तेन तैलेन सम्मर्प स्वकेशान् सप्तकेत्रयम्॥ ४९२॥

लें। यथाविधि सेवन करने से प्लीहा रोग नष्ट हो जाता है। यदि कालीमिर्च के साथ इसका सेवन करे तो चक्रवात रोग ठीक हो जाता है। इसके सेवन से दुकूल, पाचों प्रकार के गुल्मरोग, गुदभंग=भगन्दर ? शिर की पीड़ा, हिचकी, प्यास, अजीर्ण और वात्त-पित्त के रोग नष्ट हो जाते हैं।

४८७. यदि उपर्युक्त औषध सेवन से किसी व्यक्ति के रस रक्त आदि सातों धातुओं में अथवा किसी एक धातु में विकार उत्पन्न हो जाये तो उसकी शान्ति के लिए—

४८८-४८९. यदि किसी को सांप काट ले तो उस स्थान पर वीरमूल=भिलावा को पीसकर दष्ट स्थान पर लेप कर दिया जाये। सात दिन तक इसी प्रकार लेप करने से सर्पविष दूर हो जाता है।

बाल काले करने का योग

४८९-४९३. त्रिशिरा और त्रिफला (हरड़-बहेड़ा-आंवला) को पीसकर तदनन्तर कमलबीज के रस में लौह और मण्डूरभस्म के साथ उक्त चूर्ण को छः भावनाए हैं। पश्चात् बीस सेर तैल में उक्त चूर्ण का कल्क डाल दे और तीन घण्टे तक पकायें। सिद्ध होने पर तैल को निथार लें। इस तेल की सिर में इक्कीस दिन तक मालिश करने

महाभ्रमरसंकाशाः प्रलेपात्स्युः कचाः शुभाः।
बन्धुकसहचरी नीलोत्पलस्य कन्दकम्॥ ४९३॥
मर्दयन्तीकाकतुण्डी निम्बत्वक त्रिफला सह।
मार्कवं केतकीमूलं कांजीकेन तुभावयेत्॥ ४९४॥
तथा चेक्षुं समानीय मेलयेतु विचक्षणः।
रसः त्रिपीऽयते धीमान् समभागे च कारयेत्॥ ४९५॥
लौहभाण्डे ततः कृत्वा तिलतैलेन कल्कयेत्।
भूमौ निधापयेद्धीमान् ततः पश्चात्समुद्धरेत्॥ ४९६॥
पलितं लेपयेद् विद्वान् कृष्णकेशाजनप्रभाः।
मध्वाज्यं भक्षयेद्धीमान् मंडलं च निरन्ताम्॥ ४९७॥
हरते सर्वरोगाश्च वलीपलितवर्जितः।
षण्मासं सेवयेद् यस्तु जीवेत वर्षशतत्रयम्॥ ४९८॥
परेषां हितकामाय ज्ञानज्योतियतीश्वरः।
रसायनमिदं प्रोक्तं वलीयलितनाशनम्॥ ४९९॥
तालं टंकणमानीय शुद्धतुं नवसादरम्।
स्वार्जिका च यवक्षारं स्फटिकं चित्रमूलकम्॥ ५००॥

से सिर के सफेद बाल भौरें के सदृश काले और सुन्दर हो जाते हैं।

४९३-४९५. बन्धुक, सहचरी, नीलकमल क जड़, मर्दयन्ती= काकतुण्डी=काकजंघा नीम की छाल, त्रिफला के चूर्ण को मार्कव= मकोय, केतकीमूल=चमेली की जड़ और काजीक के रस की भावना दें। पुनः ईख के रस की तीन भावनायें दें।

४९६-४९९. पुनः इस चूर्ण के पात्र में डालकर तिल के तैल में कल्क कर लें। इस तैल को सफेद बालों में लगाया जाये तो बाल अंजन के समान काले हो जाते हैं। साथ ही शहद, घी और मण्डल= का निरन्तर सेवन करे तो बाल काले होकर झुर्रियां भी समाप्त हो जाती हैं। यदि इसका सेवन लगातार छः मास तक कर लिया जाये तो व्यक्ति तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है। बाल काले करने तथा वृद्धावस्था की झुर्रियों का नष्ट करने का यह रसायन दूसरों के कल्याण के लिए ज्ञानज्योति यतीश्वर ने बताया है।

५००-५०४. हरताल, सुहागा शुद्ध, नौशादर, स्वार्जिका=

सोमलं गन्धकं सूतं वत्सनागं च रेणुकम।
वज्रदन्ती देवदाली विषफली धूर्तबीजकम्॥ ५०१॥
जातीफलं त्रिकटुकं ताम्रमभ्रकचूर्णकम्।
एतद्भागसंचूर्णं चूर्णं मर्दयेद् यत्नतः सुधीः॥ ५०२॥
नागवल्लीदलद्रावैः भृंगराजरसः सकृत् ।
त्रिफलायाः पुटं दद्यात् वृत्तये शोषयेद् दृढम्॥ ५०३॥
असाध्ये म्रियमाणे च गुंजामात्रं प्रदापयेत्।
निर्वातेऽनिले स्थाने वस्त्राच्छादनमाचरेत्॥ ५०४॥
नोदकं स्पर्शयेत् किंचित प्रस्वेदं जायतेततः।
यमभंजननामायं ज्ञानज्योतिरुदाहृतः॥ ५०५॥

अथ कालमृत्युञ्जयरसः

रसगन्धकसोमलं तालं कनकबीजकम्।
गरलं वत्सनागं च समभागं च मर्दयेत्॥ ५०६॥
कटुत्रयैः पुटं दद्यात्सकृद्धर्मे च शोषयेत्।
चित्रमूलं रसं दद्यात् वज्रदन्ती तथैव च॥ ५०७॥
धान्यमात्रं रसं दद्यात् रोगी भवति जीवति।
निर्वातेनिर्जलेस्थाने वस्त्राच्छादनमाचरेत्॥ ५०८॥

सज्जीक्षार, यवक्षार, स्फटिक, रेणुक=सम्भालु, वज्रदन्ती मौलश्री, देवदाली=देवदारु, विषफली=कौंचफली, धतूरे के बीज जयपाल जमालघोटा, त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपल), ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म ये सब चीजें समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण में नागवल्ली= नागरपान, भृंगराज और त्रिफला के रस की भावनायें दें। यदि व्यक्ति- मरणासन्न हो, रोग असाध्य हो तो गुंजा=चिरमटी के समान दवा देकर निर्वात स्थान में रोगी को रखकर ऊपर से कपड़े से ढंक दे।

५०५. ऐसी अवस्था में रोगी को जल का स्पर्श भी न करायें इससे शरीर में पसीना आकर रोग दूर हो जायेगा। ज्ञानज्योति आचार्य ने इस औषध का नाम यमभंजन कहा है।

अथ कालमृत्युञ्जय रस

५०६-५०९. रस, गन्धक, सोमल, ताल, धतूरे के बीज, वत्सनाग नामक विष इनको समान भाग लेकर खरल में मर्दन करें। पुनः

प्रस्वेदो जायते चिह्नं नान्यथा स न जीवति।
पथ्यं दद्याच्च दध्यन्नं शृंगवेरेम धीमता॥ ५०९॥
अकालमृत्युजयो नाम्ना ज्ञानज्योति यतीश्वरः।

अथ संदेवभैरवः

गन्धकं यामृतं सूतं त्रयाणां कज्जलं भवेत्॥ ५१०॥
वज्रदन्तारसद्रावैः पुटं दद्यात् प्रयत्नतः।
घोघावती फलद्रावैः मर्दयित्वा च शोषयेत्॥ ५११॥
त्रिकटुरसभावेन त्रिफलाद्या रसैः पुटम्।
एतच्चूर्णं दृढ़ कृत्वा प्रयत्नेनावधारयेत्॥ ५१२॥
धान्यद्वयप्रमाणेन रसं दद्यात् सुखी भवेतु।
निर्वाते निर्जले स्थाने प्रस्वेदो जायते यतः॥ ५१३॥
एतच्चिहनं समालोक्य संशयः स्यादथान्यथा।
संदेवभैरवो नाम ज्ञानज्योतिभिरीदितः॥ ५१४॥

कटुय=सोंठ, मिर्च, पीपल की भावना देकर धूप में सुखाकर चित्रक मूल और वज्रदन्ती (मौलश्री) के रस की भावना दें। रोगी को एक चावल के बराबर दवा देकर निर्वात और निर्जल स्थान में रखकर कपड़े से ढंक दे। यदि इस अवस्था में रोगी को पसीना आ जाये तो वह ठीक हो जायेगा अन्यथा उसका जीना कठिन है। ऐसे रोगी को शृंगवेर=अदरक के साथ दही और अन्न का सेवन कराये। ज्ञान ज्योति यतीश्वर अकाल मृत्युञ्जय रस नाम दिया है।

अथ संदेव भैरव रस

५१०–५१२. गन्धक, अमृत, सूत इन तीनों की कज्जली बना लें। पुनः वज्रदन्ती=मौलश्री के रस की भावना दे। तदनन्तर घोघावती=शण के फल के रस की भावना देकर सुखा ले। पुनः त्रिकटु=सोंठ, मिर्च, पीपल के रस की तथा त्रिफला रस की भावना देकर चूर्ण को सुखाकर रख ले।

५१३–५१४. इस चूर्ण की दो चावल के बराबर मात्रा रोगी को दे, इससे रोगी को लाभ होगा। दवा देकर निर्वात और निर्जल स्थान में रोगी को रक्खे, जिससे उसे पसीना आ जाये। पसीना आ जाये तो रोगी ठीक हो जायेगा, अन्यथा रोगी के बचने की आशा नहीं है। ज्ञान ज्योति ने इस रस का नाम संदेवभैरव कहा है।

गन्धकं रस जयपाल वत्सनागं च मर्दयेत्।
कथैलिका जलद्रावैः पुटं दद्याद् विचक्षणः॥५१५॥
पुटं विषफलैर्दधात् देवदालीरसस्ततः।
मर्दयित्वा विशेषेण गुटिकां कारयेद् बुधः॥५१६॥
सर्वदष्टेंऽजनं कुर्यान्नस्यं वै दापयेद् धीः।
तातोजीरं मधुयष्टिवरापिष्टांजनं चरेत्॥५१७॥
अंजनाद् दष्टजं दोषं शमयेत् तदनन्तरम्।
अनेनाजनयोगेन जीवत्सर्पिणी भक्षणात्॥५१८॥
नीलपुष्पं च जयपालं समभागेन मर्दयेत्।
निम्बूफलरसद्रावैः छायाशुष्कं तु कारयेत्॥५१९॥
एकैकां गुटिका दद्याद् वायो एकोत्तरशते।
सर्पांजनमिदं प्रोक्तं मृतोजीवति नान्यथा॥५२०॥
जयपालं च समानीय देवदालीरसद्रवैः।
ईश्वरीरसभावेन त्रिफलारसभावतः ॥५२१॥

५१५-५१८. गन्धक, पारा, जयपाल=जमालघोटा, वत्सनाग समान भाग लेकर कथालिका=के पानी के साथ खरल करें। पुनः मिलावा फल और देवदाली के रस की भावना देकर गोली बना लें। सूर्य के काटने पर इस गोली को घिसकर आंत में अजन लगा ते और नाक में नस्म दे। पुनः जीर और मुलेहरी के चूर्ण को आँख में अंजन करे। इससे सर्पदश का विष दूर हो जायेगा। इस अंजन के योग से सर्प का काटा व्यक्ति जीवित हो जाता है।

५१९-५२०. नीलपुष्प, जयपाल=जमालघोटा दोनों समान भाग लेकर निम्बू के रस में मर्दन करके छाया में सुखा ले। एक सौ एक वायु रोगों में १-१ गोली दें। यह सर्पाजन नामक योग है इससे मृतवत् पड़ा व्यक्ति भी जीवित हो जाता है।

५२१. जयपाल=जमालघोटा को दवदाली=देवदारु ईश्वरी= नाकुली और त्रिफला के रस की भावना दें। पुनः सुखाकर रख ले। यदि सर्प काट ले तो इस दवा को सुर्मे की भांति आँख में लगायें इससे सर्व विष दूर हो जाता है। अधिक क्या है यदि जयपाल=जायफल को गिलोम के साथ बीस कर आँख में अंजन कर दें तो सर्व देश का विष दूर हो जाता है।

मर्दयित्वाजनं कुर्यात् सर्पदष्टविषं हरेत्।
कितत्रं बहुनोक्तेन जयपालेनैकेन तत्क्षणात्॥५२२॥
मुखामृता समं पिष्टा सर्पदष्टेऽजनं स्मृतम्।

अथ नेत्रस्त्रावहरः

पुनर्नवापिप्पली च मधुना सह पेषयेत्॥५२३॥
अंजनं च ततः कृत्वा नेत्रस्त्रावः प्रशाम्यति।
हरीतालं समानीय नवसादरमिश्रितम्॥५२४॥
सूतेन सहमर्द्यं च प्रवालोत्पाटनाजनम्।
औषधांजनं ततः पश्चात्सत्ये नेत्रे न चाजयेत्॥५२५॥
गरत्रयं तथा वासा पुनर्नवप्रवालकम्।
हरीतकीमध्यबीजं माषवीजं तथा क्षिपेत्॥५२६॥
कपर्दिकामाषप्रमाणकं मनःशिलामाषं सैन्धवं कुष्टकं तथा।
पिप्पली माषमात्रं स्यात्तन्मानेनैव शुष्ककम्॥५२७॥
अजादुग्धेनसम्पेष्य गुटिकां कारयेद् बुधः।
मांसवृद्धिश्च नेत्राणामंज नान्नश्यति तमः॥५२८॥
नीलपुष्पा समं तालं कास्यपात्रे निधापयेत्।
गाव्येनज्येन संयुक्तं ताम्रेण सहमर्दयेत्॥५२९॥

अथ नेत्रस्त्रावहर

५२३. पुनर्नवा और छोटी पीपल को शहद के साथ पीसकर आँख में अंजन करने से आँखों से पानी बहना (ढलकवा) रुक जाता है।

५२४-५२५. हरताल और नौसादर को सूत=पारे के साथ मर्दन कर आँख में अंजन करे।

५२६-५२८. गरत्रय=तीन विष=जमालघोटा, संखिया, भिलावा? बासा, पुनर्नवा (सफेद सांठी की जड़), प्रवाल, हरड़ की गिरी, उड़द, १ माशा कौड़ी, १ माशा मैनशिल, सैंधानमक, कुष्ठक=कूठ कड़वा, १ माशा पिप्पली, इन सबका पूर्ण करके बकरी के दूध की भावना देकर गोली बना लें। यदि आखों से मांस वृद्धि हो जाये तो इसका अंजन करने रोग दूर हो जाता है तथा तमः=रतौधी रोग भी नष्ट हो जाता है।

५२९-५३०. नीलपुष्पा=विष्णुकान्ता, ताल=हरताल बराबर=बराबर लेकर कांसे के पात्र में गाय को घी डालकर ताम्र के साथ मर्दन

नेत्रव्याधि हरेद् वैद्यो ज्ञानज्योतिप्रसादतः ।
भस्मसूतं चामृतं च गगनस्य च सत्वकम्॥ ५३० ॥
मर्दयेत् त्रिकटुद्रावैः सर्वमेकत्र धारयेत् ।
धान्यमात्रं प्रदातव्यं सन्निपाते महत्यपि॥ ५३१ ॥
सन्निपातभैरवाख्यो रसोव्याधि विनाशकः ।

अथ अभ्रकसत्वप्रकारः

धान्याभ्रकं तरुणिमूलरसेनैव च मर्दयेत्॥ ५३२ ॥
बदरीमूलसौवीरजम्बीरस्य च सप्तकम् ।
आतपे शोषयेदभ्रं यावच्च दृढतां व्रजेत्॥ ५३३ ॥
मृद्भाण्डे विनिः क्षिप्य कांजिकेन तु पूरयेत्।
तदधः स्थापयेद् भाण्डं तदधः कांस्यपात्रकम्॥ ५३४ ॥

हेमन्ते कारयेत्

माषमात्रं नरो नित्यं प्रयत्नेनैवधारयेत्।
नियमस्थः प्रदादेशी सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ ५३५ ॥
मासमात्रप्रयोगेन कल्पो भवति निश्चितम्।
समानीयाभ्रकं पूर्वं गंगेरीवृषदं हरेत्॥ ५३६ ॥

करे। इसका अंजन करने से आँखों के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

५३०-५३१. पारदभस्म, गिलोय और अमरबेल का सत्व इनको त्रिकुटा के रस से मुनि करके सुखी ले। महासन्निपात की अवस्थायें एक चावल के बराबर चूर्ण रोगी को दे दे। यह सन्निपात भैरव रस कहाता है।

अभ्रकसत्व

५३२-५३५. धान्याभ्रक को तरुणिमूल के रस से मर्दन करे। पुनः बेर की जड़ के रस सौवीर के रस और निम्बू रस की सात-सात भावनाएँ देकर धूप में सुखा लें। सूखने पर इस चूर्ण को मिट्टी के पात्र में डालकर उस पात्र को कांजिक से भर दें। इसे हेमन्तऋतु में तैयार करे। माशा भर औषध का सेवन नित्य नियमपूर्वक प्रदादेशी=सत्यवादी और जितेन्द्रिय रहते हुए तीनमास तक सेवन करे तो निश्चय से कायाकल्प हो जाता है।

५३६-५४०. अभ्रक को लेकर गंगेरी=महाबला लेकर एक मटके

भाण्डं द्विनालकं कृत्वा तन्मध्ये चाभ्रकं क्षिपेत्।
तस्योपरि गंगटीकं तस्योपरि तदभ्रकम्॥ ५३७॥
वारं वारं तथा कृत्वा मुखं मुद्रयते मृदा।
गर्त्तायमतिसन्धौ पात्रं यत्नेन मोचयेत्॥ ५३८॥
ज्वालाग्नौ सम्पचेत्सम्यक् स्वागशीतलमुद्धरेत्।
अम्लवल्लीरसं दद्यात्सौवीरं नालकद्वयोः॥ ५३९॥
भाण्डं पूर्णं ततः कृत्वा धारयेत्तु दिनद्वयम्।
एवं कृतं भवेद् द्रव्यं गगनदुतिमद्मुतम्॥ ५४०॥
सूतकं शिखिपितस्य मध्ये युक्तः प्रयत्नतः।
दोलिकायन्त्ररुपेण सत्वस्थाल्यो विमुच्यते॥ ५४१॥
तास्थाली स्थापयेद् धर्मे यावत् सप्तदिनं चरेत्।
तत् उद्धृत्य तद्वाथ अभ्रवल्लीरसैर्द्दढम्॥ ५४२॥
पाचयेद् वाग्नियोगेन सप्तवासरमानधीः ।
तत उद्धृत्य मुख्यं च द्वितीये शिखिपित्तकम्॥ ५४३॥
युक्ता च कूप्यान्तं क्रियते वाग्निनापुटम्।
तत् उद्धृत्य तृतीय स्थापयेच्छिखिपित्तके॥ ५४४॥

में डाल दें। उस मटके में दो नाल (दो छिद्र युक्त नलिका) लगा दे। अभ्रक के ऊपर गंगरीक रख दे। गंगटीरु के ऊपर पुनः अभ्रक रख दें। इसी प्रकार एक के ऊपर दूसरी दवा तब तक रखते जायें, जब तक घड़े के मुख तक औषध न आ जाये। पुनः घड़े का मुख कप रोटी से बन्द कर दें। ऊपर की मिट्टी सूखने पर इस घड़े को भूमि के भीतर गढे में रखकर अग्नि में पकाये। स्वाग शीतल होने पर घड़े को निकाल लें। घड़े में लगी दोनों नलकियों के द्वारा अम्लवल्ली=मषापणीई और सौवीर=कनोर सफेद का रस डालकर घड़े को भर दें। पुनः दो दिन तक घड़े को रक्खा रहने दें। इस प्रकार शगन दुति नामक अद्भुत दवा तैयार हो गई।

५४१-५४९. मोर के पित्ते के भीतर सूतक=पारा रखकर दोलिकायन्त्र से सत्व निकाल लें उस सत्व को सात दिन तक रखा रहने दें। पुनः उसमें अमरबेल का रस डालकर अग्नि पर सात दिन तक पकायें। पुनः उसको निकालकर मोर के दूसरे पित्ते में कूपीपक्व

पुनः कूप्यां ततः कृत्वा द्वितीये ह्यंगुलद्वयम्।
एवं च तच्च तथा कृत्वा तृतीयेऽगुलमात्रतः॥ ५४५॥
एवं वाहिन प्रयोगेन गुटिका वज्रवद भवेत्।
छागमत्स्यासि सिताखण्डमध्येऽथ सिच्यते॥ ५४६॥
धर्तूरतैलमध्येऽसौ मुच्चके पंचसेरके ।
विपाच्य वहनौ गुटिकां यावत्तैलं शोषयेत्॥ ५४७॥
भृंगतैलें तथा पक्त्वा सिद्धा सा जायते ध्रुवम्।
तिलतैलेन तथा पक्त्वा परीक्षां कारयेद् बुधः॥ ५४८॥
यदि सा शोषयेद् दुधं तदा स्यात् सुपरीक्षिता।
मुखे निःक्षेपमात्रेण वार्यस्तम्भो भवेद् ध्रुवम्॥ ५४९॥

अथ सूतराक्षसविधिः

सूतस्य राक्षस मुखं कथयामि प्रयत्नतः।
शिग्रुत्वग्रसंयोगेन पंचाशत् पुटदापनम्॥ ५५०॥
अंकोलत्वग् रसैः तद्वत् पंचविंशति संख्यया।
त्रयोदश पुटानि स्युश्चित्रमूलरसैः पुरा॥ ५५१॥
राजिकारसतो देयं पुटं द्वादशसंख्यया।
कुमार्येका समुद्रं वाऽवो यथा॥ ५५२॥
तत्पुनः सूतराजोऽपि तुषतोयं यथा स्थितम्।
कौतुकं ममचित्तेऽपि ज्ञानज्योतिदिदं पुनः॥ ५५३॥

करें। तदनन्तर मोर के पित्ते में तीसरी वार भी कूपीपक्व करें। पुनः कूपीपक्व करने में दो अंगुल तथा तीसरी बार करने में तीन अंगुल...... । इस प्रकार अग्नि के प्रयोग से गुटिका (गोली) वज्र की भांति कठोर हो जाती है। पुनः इस गोली को बकरे और मछली के पित्ते में मिश्री के साथ सिंचित कर दे। पुनः इसे पांच सेर धतूरे के तैल में अग्नि पर पकायें। सिद्ध होने की परीक्षा यह है कि दूध में डालने से सारा दूध सूख जायेगा। गोली को मुख में रखने मात्र से वीर्यस्तम्भन निश्चय से ही हो जायेगा।

सूतराक्षस विधि

पारे को शिग्रु=सुहंजना की छाल के रस के साथ पचास पुट दे। पुनः अंकोल के रस की पच्चीस पुट दें। तदनन्तर चित्रमूल रस १३

भक्षिताः सूतराजेन धातवः कुत्र यान्ति ते।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व तत्त्वज्ञोऽसि यतोऽन्तरे॥ ५५४॥

ज्ञानज्योतिरुवाच

शास्त्रवर्ज्यं तथाधीतं लीलयावदधाविता।
देहे न दृश्यते किञ्चिन्महावीर्येण धीमता॥ ५५५॥
तथाऽयं रसराजोऽपि महावीर्यो महाबलः।
मुखबन्धः कथं तस्य रसराजस्य सम्भवेत्॥ ५५६॥
रक्तसौवीरकं नीत्वा तीक्ष्णखल्वे च धर्षयेत्।
वहनेरुपरि कर्त्तव्योऽधस्तात् प्रहरभागके॥ ५५७॥
दशपुटाः शंखचूर्णैः दशध्रुवं पारिभद्रत्वचा देया।
नवाष्टौ भृंगराजतः ॥ ५५८॥
उन्मतेन तथा सप्त विजया वा प्रकीर्तिता।
विना वर्या तथा पंच चत्वारो भानुना यतः॥ ५५९॥

पुट दें। फिर राजिकारस की १२ पुट दें। घृतकुमारी=गवारपाठा के रस की एक पुट दें जैसे समुद्र में अग्नि (वडवानल) होती है उसी भांति यह अग्निगर्भ औषध तैयार हो गई।

५५३-५५४. यह सूतराज तुषतोय की भांति कच्चे और भुस सहित जौ का पानी (सन्धान), शिष्य ने कहा—मेरे चित्त में यह कौतुक है कि सूतराज पारा के द्वारा भक्षण की गई धातुएं कहाँ चली जाती हैं। हे तत्त्वत गुरु ज्ञान ज्योति जी यह सब मुझे बतलाइये।

ज्ञानज्योति ने कहा

५५५-५५६. जिसने शास्त्र द्वारा वर्जित कार्य किया और वर्जित को पढा तथा बाललीलावत् इतस्ततः भ्रमण किया उसके शरीर में बल, वीर्य और ज्ञान बुद्धिमान और शक्तिशाली गुरु ने नहीं देखा। ऐसे व्यक्तियों के लिए यह रसराज महावीर्यदायक और अत्यन्त बल देनेवाला है। ऐसे रसराज का मुख बन्द कैसे किया जाता है, यह सूनो—

५५७. इस रसराज को लाल सौवीरक=उन्नाव के साथ तीक्ष्ण खरल में घर्षण करे। पुनः एक प्रहर=तीन घण्टे तक अग्नि पर पकायें। फिर दश पुट शंख के चूर्ण, दश पुट नीम की छाल की, नवाष्टौ=१७

सोमराज्यास्त्रयो देया त्रिफलाया द्वितद्वयम्।
एकामेका त्रिकटुकैर्लवणेनैक एव हि॥५६०॥
भूमि चाम्पैस्तथा पंच देया प्रक्षालनं विना।
एवं कृत्वा तथा मध्ये यथा स्याद् भानवद्रसः॥५६१॥
ततः सतं समुद्धृत्य रक्षेत्सुप्रयत्नतः ।
रहस्यं वरमं वक्ष्ये शृणुशिष्य प्रयत्नतः॥५६२॥
रसोराक्षसवक्त्रोऽयं सुवर्णं शुल्वतारकम् ।
भक्षयेद् विविधान् धातन् ससुवर्णाकारसदृशम्॥५६३॥
स्तदा ज्ञेयं परीक्षितम् ।
पारदस्य पलेदेया सुवीमाषमात्रकाः।
वह्नियोगे समर्च्चा च ततो वदनबन्धनम्॥५६४॥
तेन पारदराजेन भावितं पूर्वोक्त वाटिकाश्रयेत्।
तेनौवरस्याजो वध्यं तेन क्त्रं च संक्षया॥५६५॥
धातवो विविधाकारस्तद्भक्तं च यतीश्वरैः।
पलमात्रं भवेत्सूतं द्विपलं गन्धरुस्य च॥५६६॥

पुट भृंगराज की, सात पुट भांग की विनावरी की पांच पुट, चार पुट भानु............

सोमराजी=बावची की तीन पुट, त्रिफला की चार पुट, सोंठ, मिर्च, पीपल की एक-एक पुट, लवण की एक पुट, भूमिचांप की पांचपुट विना धोए हुए की दें। इस प्रकार करने से पुनः पारे को निकालकर सावधानी से रख लें।

५६२. अब इस पारद का रहस्य कहूँगा उसे प्रयत्नपूर्वक सुनो—

५६३. राक्षसवक्त्र नामक यह रस शुल्व=ताम्बा आदि के तार को तथा अनेक धातुओं का भक्षण करके स्वर्ण सदृश कर देता है। अग्नि के योग से इसका मुख बन्धन किया जाता है। पारे के संयोग से भावित किया हुआ यह रस पूर्वोक्त वटी

५६६-५६९. एक पल ४४ माशे=५३ तोले माशे, मात्र पारा, दो पल ८८ माशे=७ तोले ४ माशे गन्धक लेकर दोनों की कज्जली बनाकर भिलावा आठ पल ३५२ माशे=५ छटाक, ४ तोले ४ माशे मिलाकर धूप में सुखा लें। जामुन की छाल आठ पल, सोमराजी=

उभयोः कज्जलं कृत्वा भल्लातकपलाष्टकम्।
युक्त्वातपे शीषयेच्च जम्बूत्वक् च पलाष्टकम्॥ ५६७॥
सोमराज्यास्तु बीजानि मुञ्यते च पलाष्टकम्।
पलानि कृष्ण तिलस्य चतुर्विंशतितैलकम्॥ ५६८॥
निम्बत्वग्रसकंसेराजा द्वितयं च तथास्मृतम्।
ग्रीष्मकाले वसन्ते च धर्मकाले विधीयते॥ ५६९॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय अजादुग्धेन कर्षतः।
यामार्द्धं स्कृपयेद् धर्मे कुष्ठितं वैद्यकेसरी॥ ५७०॥
माषान्नरोटिकां दद्यात् तैलेन तिलकृष्णजे।
पथ्यमेतत्प्रदातमम्लक्षारविवर्जितम् ॥ ५७१॥
जायतेस्फोटकस्तस्य शरीरेसप्तवासरा ।
एकविंशतिवस्तैश्च श्वेतकुष्ठः प्रशाम्यति॥ ५७२॥
बिंदुमात्रविशेषेण सद्य कुष्ठं विनश्यति।
हरिद्राविषसिन्दूर कामीकचं प्रकीर्तितम्॥ ५७३॥
रेणुग्रन्थिसमं कृत्वा पेषयेत्सूक्ष्मभावतः।
इष्टकाधर्षणं कृत्वा तत्र लेपो विधीयते॥ ५७४॥

बावची के बीच आठ पल, काले तिल का तैल चौबीस पल, नीम की छाल का रस दो पल ग्रीष्मकाल और वसन्तऋतु में धूप के समय निर्माण किया जाता है।

५७०–५७२. प्रातःकाल उठकर बकरी के दूध के एक कर्षमात्रा औषध का सेवन करके आधे पहर (डेढ़ घण्टे) तक धूप में बैठ जाये। उड़द की रोटी काले तिल के तैल से खाये। खट्टे और नमकीन पदार्थ से दूर रहे। इसका सेवन करने से सात दिन में शरीर पर फोड़ा निकलेगा। इस प्रकार २१ दिन में श्वेत कुष्ठ का रोग ठीक हो जाता है। यदि श्वेतकुष्ठ का छोटा सा बिंदु हो तो वह तुरन्त ही ठीक हो जाता है।

५७३. हरिद्रा=हल्दी, विष=वत्सनाभ, सिन्दूर, कामीक=इनको धूल की भांति अत्यन्त महीन पीस लें। इस दवा को पानी के साथ ईट से घिसकर कुष्ठ पर लेपन करने से तत्क्षण ही कुष्ठ नष्ट हो जाता है। यह कुष्ठ केदान नाम रस विद्वानों ने कहा है।

तेन नश्यति नेद्वदस्त तत्क्षणादेव निश्चितम्।
रसोऽयं कुष्ठकेदारः प्रोक्तस्तुपति कोविदैः॥ ५७५॥
चतुर्विंशतिधान्यानां संख्यायारजतःस्मृता।
शुल्वमष्टादशमितं रुक्मं सार्द्धचतुष्टयम्॥ ५७६॥
एनय्यंत्रे समत्कल्प कूपिकं कारयेददृढम्।
सूचीमुखप्रमाणेन पूर्वोक्तं सूतकं क्षिपेत्॥ ५७७॥
ततस्तु मुद्रितं कृत्वा तेन त्रितयकेतुना।
प्राशयेन्न शुभेयोगे निर्गच्छेद् गुदमार्गतः॥ ५७८॥
पुनः प्रक्षाल्यतद्भक्षयेत्प्रयत्नेन च धीमता।
देहहाटकनत् तस्य षणमासाज्जायते ध्रुवम्॥ ५७९॥
वीर्यस्तम्भो न शस्त्राणि द्रुतानि न लगन्ति हि।
संवत्सराद् भवेत्सिद्धिः शृणु कौतूहलं परम्॥ ५८०॥
वक्त्रे निक्षिप्यं मार्गेण सर्वसिद्धिः प्रजायते।
यं यं प्रार्थयते कामं तं त प्राप्नोति निश्चितम्॥ ५८१॥
वंगं स्तम्भयते सम्यक नात्र कार्या विचारणा।
लभ्यते भाग्ययोगेन नान्यथा यतिर ब्रवीत्॥ ५८२॥

गुटिका

२४ चावल के बराबर चांदी, अठारह चावल ताम्बा, साढे चार चावल सोना लेकर इनको कूपीपक्व यन्त्र से पकायें। पुनः इसमें सूई के अग्रभाग के बराबर पारा डाल दें। इस पात्र को बन्द करके तीन कपड़े लपेट कर रख दें। यदि इस औषध को शुभयोग में नहीं सेवन करे तो यह गुटी का गुदा के मार्ग से निकल जाती है। उसे धोकर पुनः प्रयत्नपूर्वक भक्षण कर लें। यदि छह मास तक इसका सेवन किया जाये तो शरीर निश्चय से स्वर्ण की भांतिो हो जाता है। वीर्यस्तम्भ होकर शस्त्रों का प्रहार शीघ्र नहीं होता। एक वर्ष तक सेवन करने से सिद्धि हो जाती है यह आश्चर्य कारक सुनो। मुख में रखते ही सब सिद्धि हो जाती है। जिस-जिस की कामना करता है वह-वह प्राप्त हो जाती है। वंग का सेवन उचित प्रकार से स्तमभन करता है वह-वह प्राप्त हो जाती है। वंग का सेवन उचित प्रकार से स्तम्भन करता है, इसमें विचार करने की भी आवश्यकता नहीं है। भाग्य से ही यह प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं यह यति ने कहा है।

अथ वऽवानलरसः

त्रिसिन्दूरसमंकृत्वा निश्चन्द्रः शुद्ध तालकम्।
अमृतं ताम्रचूर्णं च रेणुकं बहिमूलकम्॥ ५८३॥
मासोऽशेन ततः सूतं गन्धकं मेलयेत्सुधीः।
विषमुष्टिश्च भागं च करं च त्वग रसेन तु॥ ५८४॥
वारं वारं च तत्सर्वमेकविशति संख्यया।
क्षारत्रयं ततोयोज्यं मर्दयित्वा विचक्षणः॥ ५८५॥
गुञ्जार्द्धं भक्षयेत्प्रातः सर्वव्याधि विनाशयेत्।
वातक्षयाश्मरीकुष्ठसन्निपातभगन्दरः ॥ ५८६॥
कृमिजालंलिङ्गभंग कटिशूलं ततः परम्।
प्रमेहग्रहणीश्लेष्माविषमज्वरनाशनम् ॥ ५८७॥
अन्त्रवृद्धि शिरःस्वेदर्शासि मण्डुकामलम्।
अरुचि मूत्रकृच्छ्रं च देयं जीवस्य संशयेत्॥ ५८८॥
इतरे सर्वरोगाश्च शृंगवेररसैः सह ।
वऽवानलेतिख्यातो रसानामुत्तमो रसः॥ ५८९॥

वडवानल रस

५८३-५८८. तीन भाग सिन्दूर तीन भाग विना चमक वाला शुद्ध हरताल अमृत, ताम्रचूर्ण, रेणुक=सम्भालू बहिमूलक=और १-१ माशा पारा और गन्धक मिला दें। पुनः विषमुष्टि एक भाग तथा करञ्ज की छाल का रस डालकर मर्दन करें। इस प्रकार इक्कीस वार करञ्छालके रस की भावनाए दे। पुनः तीन क्षार=डालकर मर्दन करे। इस औषध को आधी गुंजा=आधी चिरमटी के बराबर मात्रा प्रात:काल सेवन करने से सभी रोग दूर हो जाते हैं। जैसे—वात रोग, क्षय=तपेदिक, अश्मरी=पथरी, कोढ, सन्निपात, भगंदर, कृमिरोग, ध्वजभंग=लिंग की शिथिलता कमरदर्द, प्रमेह, संग्रहणी, कफ के रोग, विषम ज्वर, आन्त्रवृद्धि सिर में पसीना आना, बवासीर, पाण्डु=पीलिया कारण भोजन में अरुचि, मूत्रकृच्छ्र=पेशाब रुक-रुक कर कष्ट से आना, रोग को जीवित रहने में संशय होना इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों में शृंगवेर=अदरक के रस के साथ देने से लाभ होता है।

५८९-५९०. यह वडवानल नामक रस रसों में उत्तम रस है।

सर्वलोकहितार्थाय उक्तोऽसौ ज्योतिकोविदैः।
श्रुतमेतन्मया सर्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ५९०॥
ज्ञातते च कथं रोगं तत्सर्वं वद मे गुरो।

ज्ञानज्योतिरुवाच

हृदिस्थं गुरुवाक्य मे शृणु त्वं च ततोऽधुना॥ ५९१॥
जीवानां च ततो ज्ञानं रोगाणां त्वतः परम्।
महाभूतानि पञ्चैव स्थूलसूक्ष्मप्रभेदतः ॥ ५९२॥
वर्त्तन्ते देहिनां देहे शृणु स्थानान्तरं तथा।
वर्त्तुलं व्योमरूपं च षट्कोणं वायुपूरकम्॥ २९३॥
त्रिकोणमग्निरूपं च अर्द्धचन्द्राकृतिर्जलम्।
कदलीस्तकमं गुल्माभं दीर्घश्च चतुरस्त्रकम्॥ २९४॥
भूमिरूपमिदं वत्सजनानां देहनिर्मितम् ।
प्राणापानसमानश्च उदानो व्यान एव च॥ २९५॥
वर्त्तन्ते देहिनां देहे क्रमात् स्थान प्रभावतः।
हृदि प्राणो वसन्नित्यं गुदेऽपानो व्यवस्थितः॥ ५९६॥
नाभिदेशे समानश्च कण्ठे वायुरुदानकः।
सर्वदेहे स्थितो व्यानो बिन्दुसूत्रे निगद्यते॥ ५९७॥

पण्डित ज्ञानज्योति ने यह योग लोगों के कल्याणार्थ कहा है। शिष्य कहता है गुरुवर! यह सब मैंने भलीभांति सुन लिया है। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि रोग की पहचान क्या है? यह कैसे जाना जाता है कि इस व्यक्ति को यह रोग है।

५९१. ज्ञानज्योति गुरु ने कहा—हे शिष्य! मुझ गुरु के हृदय में जो वाक्य है उनको तुम ध्यान से सुनो।

५९२–५९७. स्थूल और सूक्ष्म भेद से पांच महाभूत होते हैं प्रत्येक शरीरी के शरीर में ये पञ्चमहाभूत रहते हैं। इनका रुप इस प्रकार है। आकाश गोलरूप में, वायु षट्कोण रूप में अग्नि त्रिकोण रूप में अर्द्धचन्द्राकार रूप में जल तथा केले के पेड़ और गुल्म की भांति बड़ा और चतुष्कोण भूमि रूप में मनुष्यों का यह देह निर्मित हुआ है। इस देह में प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नामक पांच प्राण रहते हैं। हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठ में उदान और सारे शरीर में व्यान नामक प्राण निवास करता है।

व्योमस्थाने स्थितो बिन्दुर्मारुतो हृदयस्थले।
नाभिस्थाने वसेदग्नि गुदे लिंगे च चन्द्रमाः॥ ५९८॥
हस्तपादादिकं सर्वं भूमिरूपं प्रचक्षते।
इडा च पिंगला चैव सुषुम्णा योद्धर्ववाहिनी॥ ५९९॥
अलम्बुसाजयाक्षुच्छा दक्षिणांगे समाश्रिताः।
कुहू च शंखिनी नाडी वामभागे प्रकीर्तिताः॥ ६००॥
एता दश त्रिधा नाऽयो देहिनां देहसंश्रिताः।
घटवत्तिष्ठते देहो नवछिद्रसमान्वितः॥ ६०१॥
शुक्रशोणितमांसास्थिलोमामख तथा शिरा।
मेदोरक्तस्तथा मज्जा मातरोदशधास्मृताः॥ ६०२॥
एवं देहं समालोक्य हलेनांग परीक्षयेत्।
चपला शिथिला सूक्ष्मा त्रिधा ज्ञानं च नाडिका॥ ६०३॥
देहे च रोगिणां नित्यं नाडीशास्त्रविशारदैः।
चपलायमुनाप्रोक्ता गंगा च शिथिला मता॥ ६०४॥

५९८-५९९. शरीर में सिर आकाश स्थानीय है, हृदय में वायु, नाभि स्थान में अग्नि, गुदा और उपस्थ में चन्द्रमा तथा हाथ-पैर भूमि रूपक है।

५९९. इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाडी ऊर्ध्ववाहिनी हैं।

अलम्बुसा और जयाक्षत् नामकनाड़िया शरीर के दक्षिण भाग में स्थित हैं कुहू और शंखिनी नाड़ियां शरीर के बाएं पक्ष में रहती हैं। ये तीन प्रकार की दश नाड़ियां शरीर धारियों के शरीर में स्थित रहती है। यह शरीर घड़े की भांति है इसमे नौ छिद्र (दो आँख दो कान, दो नाक, एक मुख एक उपस्थ और एक पायु=गुदा) हैं। शुक्र=वीर्य, मांस अस्थि=हड्डी, लोम=बाल, नख=नाखून, शिरा=नाडी मेद चर्बी रक्त और मज्जा ये शरीर की दश माताएं हैं। इन उपर्युक्त सभी शरीरांगों का निरीक्षण करके रोग की पहचान करनी चाहिए।

६०३-६०४. नाडी की गति तीन प्रकार की होती है, चपला=शीघ्र चाल की शिथिला=मन्दगतिवाली= रुक-रुक कर चलने वाली और सूक्ष्म=धीमी गतिवाली। रोगियों के शरीर में रोगानुसार यह नाडी तीन प्रकार से गति किया करती है। नाडी तत्व विशारद वैद्य ऐसा कथन करते हैं।

सूक्ष्मा च भारती ज्ञेया नाडीत्रितयमीक्षते।
दहमध्ये कथं नाडी विज्ञेया विषजां गुरो॥ ६०५॥
एतत्सर्वं समाज्ञातं तत्त्वतो मुनिपुंगवः।
श्लेष्मादीनि च सर्वाणि ज्ञायन्ते गुरुसेवया॥ ६०६॥
नाडीवातोद्भवा गंगा यमुना पित्तनाडिका।
श्लेषमरूपा शारदा स्यान्नाडीत्रितयमीदृशम्॥ ६०७॥
शिथिला वातभावेन चपला पित्तवाहिनी।
सूक्ष्मासा श्लेष्मभावेन नाडीनामीदृशी गतिः॥ ६०८॥
वातस्थाने भवेत् पित्तं पित्तस्थानेमरुद्गतिः।
श्लेष्मस्थानेरि पित्तमन्योऽन्याश्रयसंश्रितिः॥ ६०९॥
उच्चनीची विजानीयाद् रोगिणां रोगहेतवे।
एकैकस्या गुणा गेया बहुधा शास्त्रकोविदैः॥ ६१०॥
चक्रीसर्पश्च मण्डूका कुकुटाहंसवाहिनी।
काकजलूका तन्त्री च मयूरा मार्गणाकृतिः॥ ६११॥

६०५-६०६. चपला=शीघ्रगति वाली नाडी का नाम यमुना है, शिथिलगति वाली गंगा कहाती है। सूक्ष्म=धीमी गति की नाडी को भारती कहते हैं।

वैद्य लोग शरीर में स्थित नाडी का ज्ञान कैसे करते हैं, हे मुनिश्रेष्ठ! मैंन यह सब जान लिया। श्लेष्मा आदि का ज्ञान भी गुरु की सेवा से प्राप्त हो सकता है।

६०७-६०८. गंगा नाडी वातप्रधान होती है, पित्त प्रधान नाडी यमुना कहाती है, कफ प्रधान नाडी, शारदा=भारती होती है। वात प्रधान होने से नहीं शिथिल चलती है पित्त प्रकोप से शीघ्र गति से चलती है तथा कफ को अधिकता से नाडी धीमी गति से चलती है।

६०९-६१०. कभी-कभी वात की नाड़ी में पित्त प्रधान हो जाता है और पित्त प्रधान नाडी में वात की प्रधानता हो जाती है तथा कफ प्रधान नाडी में बात और पित्त की भई बहुलता हो जाती है। इनके लक्षण परस्पर मिले-जुले हो जाते हैं। रोगियों के कल्याणार्थ इन नाडियों की ऊँची-नीची गति से रोग को पहचान करके इनके गुण दोष का वर्णन करना चाहिये।

६११-६१२. चक्री=चक्र की भांति चलनेवाली, सांप की तरह

जन्त्रसत्रामृदंगा च कुम्भयन्त्री च टंकिका।
एतेभेदाः समाख्याता नाडीनां च भिषग्वरैः॥ ६१२॥
रजःसत्त्वं तमोदेहे वर्त्ततेदेहिनां सदा।
सात्विकीवातरूपेण राजसं पित्तवाहिनी॥ ६१३॥
तामसीश्लेष्मभावेन भाव्यते नाडिकात्रयम्।
यदावातगृहे नाडी चपला दृश्यते हि सा॥ ६१४॥
वातपित्तं तदा ज्ञेयं वैद्यशास्त्रविशारदैः।
शिथिला पित्तगेह स्यात् श्लेष्मवातस्तदोच्यते॥ ६१५॥
सूक्ष्मा पलयेपी चपला श्लेष्मा भवेन्नृणाम्।
चपला या भवेत्सूक्ष्मा पित्तश्लेष्माभिधीयते॥ ६१६॥
शिथिलागृहे सूक्ष्मा च वातश्लेष्माभिधीयते।
प्रतिलोमानुलोमेन सदा नाडी समाचरेत्॥ ६१७॥

आड़ी तिरक्षी चाल वाली मेढक की भांति कूद-कूदकर चलने वाली, मोर, हंस, कौआ जलौका=जोंक की भांति रेंगकर चलने वाली, तन्त्री=वीणा के तारों की भांति कांपकर चलने वाली, मोर की चाल जैसी, जन्त्रसत्रा, मृदंगा=ढ़ोलक की भांति गूंजने की आवाज जैसी, कुम्भयन्त्री टंकिका नाडी गति के ये तेरह भेद नाडी की गति जानने वाले श्रेष्ठ वैद्यों ने बताये हैं।

६१३-६१४. सत्त्व, रज और तम ये तीनों शरीरधारियों के शरीर में सदा विद्यमान रहते हैं। सत्त्व गुण प्रधानता वात के कारण, रजोगुण की प्रधानता पित्त के कारण तथा कफ के कारण तमोगुण को प्रधानता होती है।

६१४-६१७. यद्यपि वातप्रधानता में नाडी शिथिलरूप से चलती है, परन्तु यदि वात नाडी यदि चपल=शीघ्रगति से चलती है तो वातपित्त की प्रधानता जाननी चाहिये। पित्त स्थान नाड़ी यदि शिथिल चलती है तो उसे कफवात की बहुलता जानें। यदि सूक्ष्म गति वाले स्थान की नाड़ी चपल=शीघ्र चलती हो तो उसे कफ-पित्त से युक्त जाने। शिथिल गति वाली वात नाडी यदि सूक्ष्मगति से चलती हो तो उसे वात-कफ युक्त मिश्रित जानें। इस प्रकार प्रतिकूल और अनुकूल गतियों को जानकर नाड़ी ज्ञान प्राप्त करे।

एकोभावश्च सर्वेषां सन्निपातस्तदामृतः।
पित्तश्लेष्मगुणाः प्रोक्ताः श्लेष्मणः शैत्यमेव च॥ ६१८॥
वातकफस्य विज्ञेयो गुणभेदेन धीमता।
श्लेष्मावसन्तवर्षासु पित्तं ग्रीष्मशरद्वति॥ ६१९॥
हेमन्ते शिशिरे वातो गुणानामीदृशी गतिः।
अन्योऽन्यं सम्भवन्त्येते विशेषोऽयं प्रकाशितः॥ ६२०॥
कटुक्षारो भवेदुष्णं वायो मधुक वायतः।
अम्लतिक्तो भवेत श्लेष्मा रसानामीदृशी गतिः॥ ६२१॥
प्रस्वेदो मैथुने शोष प्रज्वाल्य न सुखाना।
उष्मभावे भवेन्नर्णिां ज्ञायते चपलागृहे॥ ६२२॥
वातपित्तस्थितिशैत्यभावैरुष्णोमरुन्नर्णिाम् ।
पूर्वपानीयपानेन वापीकूपोदकेन वा॥ ६२३॥

६१८. जब इन सब नाड़ियों की एक गति=एक चाल वाली हो जाये उसे सन्निपात अवस्था कहते हैं। पित्त और कफ के गुण कह दिये। शैन्य का भी कथन कर दिया। वात और कफ के भी भेद गुण भेद से जान लेने चाहिये।

६१९-६२०. वसन्त और वर्षा ऋतु में कफ की वृद्धि होती है। पित्त की वृद्धि ग्रीष्म और शरद् ऋतु में होती है। हेमन्त और शिशिर ऋतु में वात वृद्धि हुआ करती है। कभी-कभी ये मिले-जुले भी हो जाते हैं। अर्थात् उक्त ऋतुओं से भिन्न भी कारण विशेष से कफादि की वृद्धि हो जाया करती है।

६२१. पित्त प्रधानत्व का लक्षण है—कटु=कडुआ, क्षार=लवणीय रसयुक्त होना वातप्रधान मधुर रस वाला होता है। कफ का रस अम्ल=खट्टा और तिक्त=तीखा होता है।

६२२-६२५. मैथुन करने से पसीना और शुष्कता आती है। इससे उत्पन्न गर्मी के कारण नाडी तीव्रगति से चला करती है। वात-पित्त की स्थिति में उष्ण वायु शीतल भाव को प्राप्त हो जाता है। भोजन से पूर्व जल पीने से बावडी अथवा कुयें का जल पीने से रात्रि जागरण से और शिशिर ऋतु के सेवन से कफ की वृद्धि हो जाती है। इस ऋतु में तैल या तिल से बना पदार्थ खाने से अजीर्ण=अपचन और

निशिजागरणेनैव श्लेष्माशिशिरसेवया ।
तैलं वातिलपिष्टं वा पूर्वपिष्टस्य भक्षणात्॥ ६२४॥
अजीर्णं हृदि दाहोऽपि विज्ञातव्यं भिषगवरैः।
अत्यम्लदधियोगेन श्लेष्मभावो भवेत्तदो॥ ६२५॥
वृद्धातरुणीदधिसेवी वातकफप्रकीर्तिताः ।
तरुादधियोगेन कट्वम्लात् पित्तमुदाहृतम्॥ ६२६॥
भाषन्नात् पित्तवातश्च वृन्ताकं शिथिलांगकृत्।
शैत्याम्लाज्जायते जीर्णे वा तत्र काजिकात्॥ ६२७॥
पयसा वर्त्तसम्पत्तिः सर्पिषा पुष्टिरेव च।
वृत्तांक कोमलं पथ्यं कूष्माण्डं कोमलं विषम्॥ ६२८॥
फलेषु भक्षते काले करवायं कर्कटी विना।
त्रिफला भक्षणं चैव पानात् शैत्यं समुद्भवेत्॥ ६२९॥
अजीर्णे भेषजं वारि सहसा पुष्टिसम्भवम्।
भोजनोपरि पानेन भुक्तमन्नं वजीर्ज्जति॥ ६३०॥

हृदय छाती में जलन हो जाती है। अत्यन्त खट्टे दही का सेवन करने से भी कफ वृद्धि हो जाया करती है।

६२६. ....और दही के सेवन से वात और कफ की वृद्धि होती है। ....और दही में मिलाकर खाने से और कड़वा तथा खट्टा पदार्थ खाने से पित्त बढ़ जाता है। उड़द के सेवन से वातपित्त की वृद्धि होती है तथा वृन्ताक=बैंगन खाने से शरीर शिथिल हो जाता है।

६२७.

६२८. दुध पीने से घी के सेवन से शरीर पुष्ट होता है। कच्चा बैंगल पथ्यकर है तथा कच्चा पेठा विष के समान है। समय पर होने वाले फलों का सेवन हितकर है। बिना ककड़ी के खाना चाहिए।

६२९. त्रिफला के भक्षण करने अथवा पीने से शीतलता मिलती है।

६३०.

अन्नोपरि च पानेन तत्सर्वं विषवद् भवेत्।
निशिपाने रसाधिक्य मित्यूचुर्मु निपुंगावः॥ ६३१॥
प्रातः पानेन सर्वेषां रोगाणां नाशये वहिः।
क्वथितोदकपानेन मलपाकश्च जायते॥ ६३२॥
मांसभक्षणतो देहे वपुष्टिरुदाहृता।
मलेबन्धनभवेत्तस्य व दधि तथा मता॥ ६३३॥
मत्स्यादनेन तरलं मलवीर्यलधूच्यते।
शृंगवेरमरीचक हिंगुलरक्तवरी निशा॥ ६३४॥
अजमोदं वजीरं भक्षणात्तत्प्रमुच्यते।
राजिका नवनीतेन भविता वातकारिका॥ ६३५॥
पश्चात् शैत्यप्रधाज्ञेया चादौ तापप्रदामता।
आद्रामादौमृगस्यान्ते मध्येमूलं प्रतिष्ठति॥ ६३६॥
रविनामनक्षत्रमेक नाऽयां यदा भवेत्।
तदा च रोगिणो मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम्॥ ६३७॥

---

६३१. भोजन के तुरन्त पश्चात् जल पीना विष भक्षण के समान होता है। रात्रि को जल पीने से रस की वृद्धि होती है तथा प्रात:काल उठते ही पानी पीने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। हल्का गर्म पानी पीने से पेट साफ हो जाता है।

६३३–६३४. मांस के सेवन से शरीर पुष्ट होता है। दही के सेवन से मल बंध कर आता है। मछली के सेवन से मल और वीर्य पतला और कम हो जाता है। शृंगवेर=अदरक, काली मिर्च, हिंगुल=रक्तवरी=निशा=हल्दी अजमोद और वजीर के सेवन से

६३५–६३६. राजिका=हल्दी को मक्खन के साथ सेवन किया जाये तो वातवृद्धि होती है। बाद में सेवन की हुई शीतलता प्रदान करती है पूर्व खाई हुई उष्णता देती है।

६३७. आर्द्रा नक्षत्र के प्रारम्भ में, मृगशिरा नक्षत्र के पश्चात्, मूल नक्षत्र के मध्य जब रवि नामक नक्षत्र एक नाड़ी में हो तो उस समय रोगी की मृत्यु अवश्य होती है, ऐसा कथन काल का ज्ञान रखनेवाले विद्वान् लोग करते हैं।

इति श्रीज्ञानज्योतिकृते गुरुशिष्यसंवादे ज्ञानज्योतिसम्पूर्णम्। शुभमस्तु। संवत् १८९६ चैत्र सुदि पंचम्यां तिथौ रविवासरे लिखितम्। लक्ष्मीचन्द ब्रह्मचारी प्रीत्यर्थे शुभं भूतात्।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते॥ १॥

इस ज्ञानज्योतिकृत गुरु शिष्य संवाद नामक ज्ञानज्योति ग्रन्थ पूरा हुआ। शुभ हो। [विक्रम] संवत् १८९६ चैत्र शुक्लपञ्चमी तिथि रविवार के दिन इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गई। लक्ष्मीचन्द ब्रह्मचारी की प्रीति के लिए [यह ग्रन्थ] शुभ हो।

[प्रतिलिपिकर्त्ता कहता है—]

जैसा पुस्तक देखा वैसा मैंने लिख दिया है। यदि शुद्ध वा अशुद्ध हो तो मुझे दोष नहीं दिया जाना चाहिए।